॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

वर्ष ४

भक्ति

संख्या ६

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

फाल्गुन सम्वत् १९८६

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
लेफ्टिनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांधावालिया राजा सांसी अमृतसर	११११)
पं॰ जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां	११०)
धर्मसिंह मानजी जेठवा कालरांप्रोप्राइटर भरिया	१०२)
ला॰ नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी।	१०२)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ एग्रीकल्चर लाहोर	"
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा	५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा	५१)
ला॰ जौहरी मलजी रेवाड़ी	५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा	५१)
मुन्शी चमहूमल बलिराम जी भटिण्डा	५१)
सर आपा राव भोंसले साहिब सी. एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर	५१)
प्रो॰ बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लछमादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	"
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	"
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा	"
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर	"
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली	"
श्री भक्तांणीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी "	"
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज	"
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां	"
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद	"
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी	"
एस, जे, राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट,	"
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली	"
पी. एन, कौल बैरिस्टर दिवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर	"
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्ट्रेट झंग	"
लाला फकीरलाल जी जींद	२५)

सहायक

प. टी. शाह जयपुर	१३)
जमादार उमरावसिंह भाडावास	११)
राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर	११)
चौधरी हुकमसिंह जी निखरी	११)
पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी	११)
लाला घमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा	११)
चौधरी मनोहरसिंह जी ,, पाल्हावास,	,,
लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली	,,
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	,,
चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरहोल	१०
बाबू शिवरामसिंह जी गढ़ीबोलनी	७)
माई गुलाबदेवी दिल्ली	५)
लाला बनारसीदास दिल्ली	५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी	५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़	५)
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
रा० ब० लखनारायण सिंह जी बाढ़, पटना	५)
रा० सा० बांकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिड़ावा	५)
बा० बैजनाथसिंह पेन्शनर, बर्मा	५)
ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर	,,
ओड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी	,,
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहड़ी	५)
लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली	,,
बाबू रामस्वरूप गणेश मेल ,,	५)
पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर	,,
लाला न्यादरमल जी दिल्ली	,,
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
लाला प्रभुदयाल जी फर्रुखनगर	,,
त्रिवर्णा देवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा	,,
बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	,,
रा० सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर	,,
पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर	,,
श्रीमान् धानी चन्द लाहौर	५)
श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
श्री मां दुर्गादेवी भिवानी	५)
डाक्टर कुन्तीकुमारी दिल्ली	५)
हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर	५)
सूरजमल सुरेलिया खेतड़ी	५)
भूरसिंह माजरा, अलवर	,,
मोहकमसिंह बाघणकी	,,

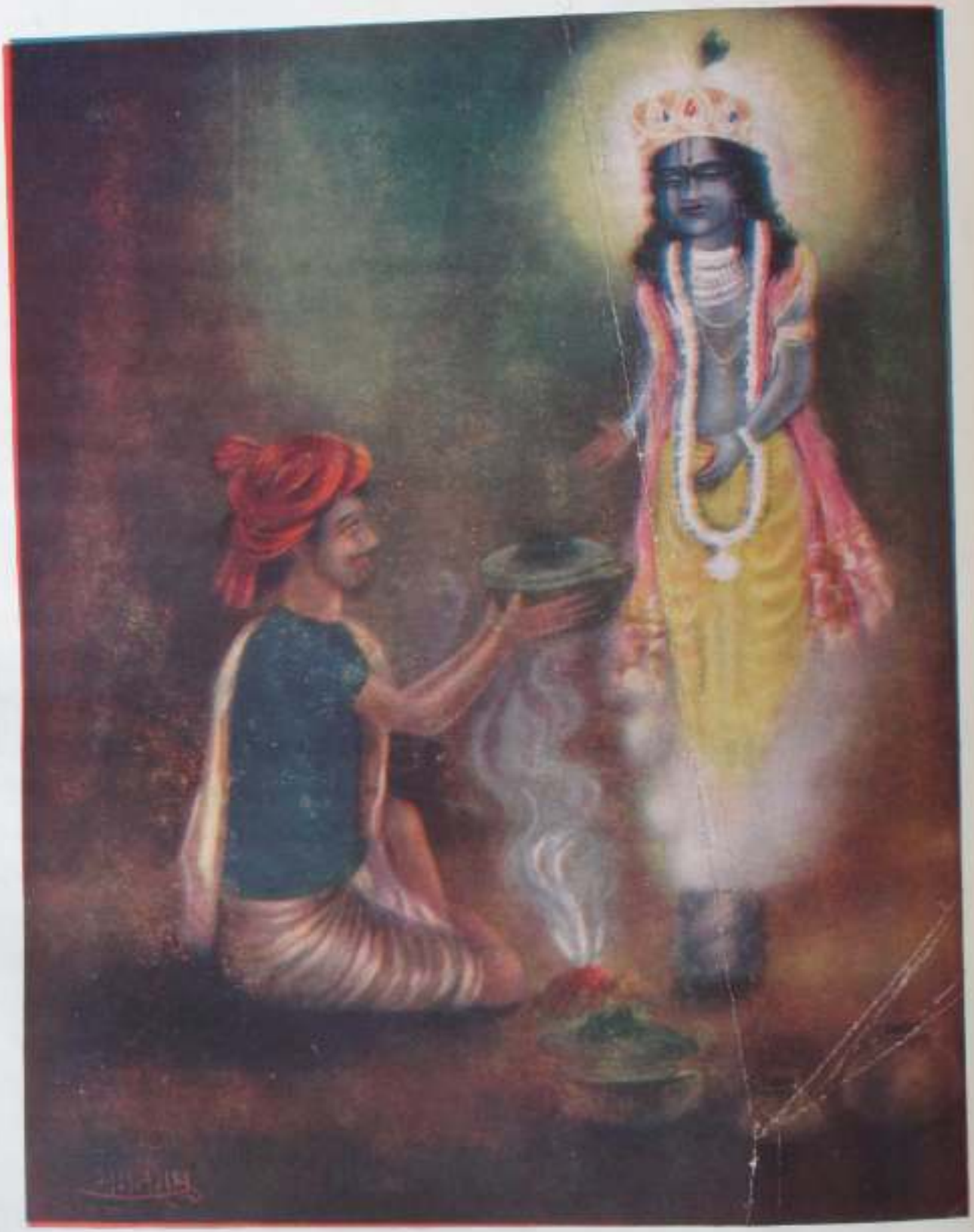

श्रद्धालु भक्त-धन्नाजाट

Gita press, Gorakhpur

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुण पूर्णिमा सं० १८९६ { अङ्क ६

वेदोपदेश

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ १ ॥

उस यज्ञ साधन भूत पुरुष का जो सृष्टि के पहले पुरुष रूप में पैदा हुआ था मानस यज्ञमें प्रोक्षणादि संस्कार किया और उस पुरुष ने देवता सृष्टि साधन योग्य प्रजापति और ऋषियों ने मानस यागसम्पादन किया

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ २ ॥

उस सर्वात्मा पुरुष रूप यज्ञ से दधिमिश्रित घृत अर्थात् भोग्य वस्तु पैदा हुई, और उस पुरुष ने उन

वायु देवता वाले आरण्यचारी और ग्रामचारी पशुओं को पैदा किया ॥ २ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ३ ॥

उस सर्वात्म यज्ञ पुरुष से ऋक् साम पैदा हुये उसी से छन्द अर्थात् गायत्र्यादि पैदा हुये उससे यजुर्वेद पैदा हुआ ॥ ३ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ४ ॥

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से घोड़ा पैदा हुए और यह जो ऊपर नीचे के दांतों से युक्त हैं वे पैदा हुये उसी से गाय पैदा हुई उसीसे भेड़ बकरियां पैदा हुईं ॥ ४ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखंकिमस्यासीत्किम्बाहूकिमूरूपादाऽउच्यते ॥ ५ ॥

जिस समय देवा के जीव रूप देवताओं ने विराट रूप पुरुष को संकल्प से पैदा किया तिस समय किस तरह से कल्पनाकी — उस पुरुष का मुख कौन हुआ कौन बाहू कौन जंघा कौन पाद हुये ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

गतांक से आगे

[ले० श्रीपूज्य भोले बाबा जी]

कथा विष्णुपुरी की

विष्णुपुरी जी परम भगवद्भक्त थे। भागवत् धर्म के सामने अन्य सब धर्मों को असार समझते थे। यह माध्व संप्रदाय में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। श्रीमद्भागवत् रूप समुद्र में से इन्होंने श्लोक रूपी अमूल्य रत्न निकाल कर कलि के दरिद्री जीवों को निहाल कर दिया, जगन्नाथपुरी में एक बार बातों ही बातों में साधुओं में यह प्रतिवाद होने लगा कि विष्णुपुरी मुक्ति के हेतु काशीपुरी में निवास कर रहे हैं, श्रीकृष्ण महा प्रभु जी ने उत्तर दिया कि उन को न तो मुक्ति से कुछ प्रयोजन है, न किसी देवता से, न काशी से कुछ मतलब है, श्रीकृष्ण चरणकमलों के सिवाय किसी अन्य में भूलकर भी उनकी चित्तवृत्ति नहीं जाती, केवल सत्संग के अर्थ काशी में टिके हुये हैं, जब लोगों ने नमाना तो महाप्रभु ने एक रत्न की माला भेजने के लिये विष्णुपुरी को पत्र लिखा। विष्णुपुरी अपने गुरु के मन की बात को समझ गये और उन्होंने श्रीभागवत् रूप समुद्र में से पांच सौ श्लोक रूपी रत्न चुनकर एक माला बनाई और भक्त रत्नावली उसका नाम रख कर अपने गुरु के पास

भेज दी। साधु उसको पढ २ कर भक्ति रस में मग्न होगए। सबको विश्वास होगया कि विष्णुपुरी जी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं और गुरु निष्ठा में भी ऐसे ही हैं। इस भक्त रत्नावली के तेरहवें अध्याय में उनमें भिन्न २ नवधा भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका वर्णन है। विषयी से भी विषयी पुरुष उस को पढ़कर कृष्ण प्रेम में रंग जाते हैं।

विष्णुपुरी गुरु भक्त, वास काशी में करते।
करते हरि गुण गान, ध्यान भगवान् का धरते॥
लिखा पत्र गुरु देव, रत्न माला मंगवाई।
संग भागवत् रत्न, पंच शत माल बनाई॥
पढ़ी भक्त रत्नावली, भक्त भक्ति रस मग्न मन।
भोला! निर्धन जन्म का, पाया अक्षय भक्ति धन॥

कथा पृथ्वीराज की

पृथ्वीराज कछवाहे आमेर के राजा ऐसे भगवद्भक्त और गुरु निष्ठ हुए कि घर बैठे ही द्वारकानाथ महाराज के दर्शन पाये, शंख चक्र का छाप उनके शरीर पर प्रकट हुवा और कृष्णदास की कृपा से सब धर्म और उपासना के ज्ञाता हो गये। यह भीष्मपितामह के सदृश निष्पाप, युधिष्ठिर के समान धर्मात्मा और प्रह्लाद के समान भजन करने वाले थे। यह श्रीकृष्णदास जी के शिष्य किस प्रकार हुये, इस बात का श्रीकृष्णदास जी की कथा में वर्णन है, एक बार पृथ्वीराज ने कृष्णदास जी के साथ द्वारका जाने का विचार किया। जब सब सामग्री तैयार हो गई तब राज मंत्रियों ने कृष्णदास जी से विनय की कि इस देश में भक्ति का प्रचार बढ़ता जाता है. राजा के चले जाने से भक्ति की चलती हुई गाड़ी में रोड़ा लग जायगा। यह सुनकर कृष्णदास जी ने राजा को राज्य में ही रहने की आज्ञा दी। राजा उदास होकर कहने लगा कि एक तो आप के चरण कमलों का संग, दूसरे द्वारकानाथ का दर्शन, तीसरे गोमती का स्नान और भगवत् शस्त्रों के चिन्ह प्राप्त होने का लाभ था, इन सब लोगों से विमुख रहा जाता हूं, इस लिए आप सेसाथ ले चलने के लिएविनय करता हूं। कृष्णदास जी ने कहा कि शोच मत कर, यह सब लाभ तुझे यहां ही प्राप्त हो जांयगे। इतना कह कर कृष्णदास जी द्वारका चले गये। राजा उनके वियोग से आठ २ आंसू रोने लगा। उसके नेत्रों में से श्रावण भादों की सी वर्षा का झड़ लग गया। तीन दिन तक रोते २ बीत गये। आधी रात को कृष्णदास जी का शब्द सुनाई दिया। राजा दौड़ कर गया तो क्या देखता है कि द्वारकानाथ स्वयं खड़े हुये हैं। राजा ने प्रेम में मग्न होकर दंडवत और परिक्रमा की फिर आज्ञा पाकर गोमती में स्नान किया। शरीर पर शंख चक्र के चिन्हअंकित होगये। रानी भी राजा की आज्ञा से गोमती में स्नान करके कृतार्थ हो गई। सवेरे ही यह वृत्तांत सारे संसार और देश २ में फैल गया। नगर के लोग और जहां तहां के सन्त महन्त दर्शन के लिए आये नाना प्रकार की भेट लाये और सब को गुरु भक्ति तथा भागवत् भाव का विश्वास दृढ़ हुवा। पश्चात् राजा ने एक मन्दिर बनवाया और उस में द्वारकाधीश की मूर्ति विराजमान करके दिन रात सेवा पूजा में रहने लगा। एक अन्धा ब्राह्मण बहुत दिनों तक सूझता हो जाने के लिये वैजनाथ जी के द्वार पर पड़ा रहा, एक दिन वैजनाथ जी ने दया करके कहा कि पृथ्वीराज का अंगोछा आंखों पर मल दे, आखें खुल जांयगी। ब्राह्मण राजा के पास आया और सब वृत्तांत कह कर राजा का

अंगोछा मांगा। राजा ने एक नवीन अंगोछा लेकर अपने शरीर से छुवा कर ब्राह्मण को दे दिया तुरंत ही आंखें खुलगई और ब्राह्मण सूझता होगया! सच है, भगवद्भक्ति और गुरु निष्ठा का ऐसा ही प्रताप है कि असम्भव भी सम्भव हो जाता है। जिनको भगवत् में पूर्ण प्रेम है और जिनकी गुरु में पूर्ण आस्था है, उनके लिए कुछ भी दुर्लभ्य नहीं है सब कुछ सुलभ्य है।

राजा पृथ्वीराज, प्रेम गुरु चरणन कीन्हा।
आय द्वारकानाथ दर्श घर पर ही दीन्हा॥
शंख चक्र हरि चिन्ह, छाप घर बैठे पाये।
राजा रानी साथ, गोमती शुचि जल न्हाये॥
हुआ अन्ध भी सूसता, भूप अङ्गोछा आंख मल।
भोला निर्बल निपट ही, पाया अद्भुत भक्ति बल॥

कथा तत्वाजीवा की

तत्वाजीवा दो भाई थे। यह दोनों भाई कमल रूप पद्मनाभ देश को प्रफुल्लित करने के लिये सूर्य सदृश हुए। अथवा भगवद्भक्ति रूप सुधासिन्धु के ये दोनों भाई तट थे। इनके प्रभाव से लाखों स्त्री पुरुष को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई। रघुकुल वालों के समान ये दोनों सत्यपरायण थे। इन्होंने अपने द्वार पर एक सूखी लकड़ी गाड़ रक्खी थी और इनका यह प्रण था कि जिस के चरणामृत से यह लकड़ी हरी होजायगी उसको गुरु करेंगे। कबीर जी के चरणामृत से वह हरी होगई, यह दोनों कबीर जी के चेले होगए। चलते समय कबीर जी कह गये कि जब तुम पर कोई आपत्ति पड़े तब तुम मेरा स्मरण करना। उनके जाने के बाद जुलाहे के चेले होने के कारण इन दोनों ब्राह्मणों को इनके सजातियों ने जाति से बाहर कर दिया और इनकी लड़की का विवाह लेना अंगीकार न किया, दोनों भाई बड़ी चिंता में पड़े और उन्होंने यह सन्देशा अपने गुरु को कहला भेजा। कबीर जी ने उत्तर भेज दिया कि यह लोग भगवत् से विमुख हैं, तुम्हारे सम्बन्ध के योग्य नहीं हैं; इसलिये तुम दोनों भाई अपने लड़के लड़कियों का आपस में सम्बन्ध कर लो। गुरु जी की आज्ञानुसार दोनों भाई ऐसा ही करने को तैयार होगये। यह सुनकर जाति वाले घबराये और सब ने एकत्र होकर दोनों भाइयों से कहा कि ऐसा करना उचित नहीं है। इन्होंने उत्तर दिया कि हमको गुरु आज्ञा के सिवाय और कुछ करना स्वीकार नहीं है दोनों भाइयों को अपने निश्चय में दृढ़ देखकर सब लोग ऐसा न करने की विनय करने लगे। दोनों भाई कबीर जी के पास गये और सब वृत्तांत सुनाया उन्होंने कहा कि यदि वे लोग भगवद्भक्ति स्वीकार करें तो उनकी बात मान लो! सब ने भगवद्भक्ति स्वीकार कर ली और आपस में नातेदारी होने लगी। भक्ति के प्रताप से भगवत् शरण होकर सब कृतार्थ हुए।

तत्वा जीवा भ्रात, सत्य पथ चालन हारे।
गुरु परखन के हेतु, ठूंठ था ठाढा द्वारे॥
पा कबीर पद तोय, ठूंठने कुल्ला दीन्हे।
गुरु जुलाहा जान, विप्र सुत गिल्ला कीन्हे॥
हारि गये द्विज अन्त में, नातेदारी कीन्ह सब।
भोला! जब हो गुरु कृपा, हारें क्यों नहि शत्रु तब॥

कथा खोजी की

खोजी परम भगवद्भक्त और गुरुनिष्ठ थे। उनके गुरु ने अपने स्थान पर एक घण्टा लटका रक्खा था और चेलों को समझा दिया था कि हम

जब परम धाम को जायेंगे तब यह घण्टा बजेगा, जब गुरु ने देह त्यागा तो घण्टा न बजा। चेलों को बड़ी चिंता हुई। खोजी उस समय वहां थे नहीं। जब आये तो सब वृत्तांत सुना। जहां गुरु ने देह त्याग किया था, वहां लेट कर खोजी ने देखा कि सामने आम्ब के वृक्ष पर एक पक्का आम्ब लग रहा है। खोजी ने इस आम्ब को तोड़ कर देखा जो एक कृमि इसमें रेंगता हुआ मिला। उसी क्षण वह कृमि मर गया और घण्टा टनन २ बजने लगा। सब को निश्चय होगया कि गुरुजी परम धामको गये। ऐसा करने से गुरु ने चेलों को यह उपदेश दिया कि अन्त काल में जहां मन जायगा, वहीं जन्म होगा। भगवान् ने भी गीता में यही कहा है।

खोजी ज्ञानी भक्त, योगवित् परम सयाने।
गुरु गये परमधाम, शिष्य शंकायुत जाने॥
कीन्हा गुरु पद ध्यान, आम्बका फल तुड़वाये।
मरा कीट गुरु शीघ्र, विष्णु परमधाम सिधाये॥
शिष्य भये सब मग्न मन, घंटा बाजा टनन टन।
भोला! शिक्षा दीन्ह गुरु, रखो न इच्छा लेश मन॥

कथा गुरुनिष्ठ की

एक गुरु निष्ठ भगवद्भक्त ऐसे हुए कि गुरुके सिवाय दूसरे साधु सन्त की सेवा करना ही नहीं जानते थे। गुरु की इच्छा यह थी कि साधु सन्तों की भी सेवा किया करो तो अच्छी बात है, परन्तु इस बात की परीक्षा किये बिना आज्ञा करें या न करें, यह विचार कर चुप होगए। जब शिष्य तीर्थ यात्रा को जाने लगा तो गुरु ने कहा कि जब तू लौट कर आवेगा, तब मैं तुझे शिक्षा दूंगा। जब शिष्य लौटने को था, तो उसके आने से एक दिन पहिले गुरुजी ने प्राण छोड़ दिये, लोग जलाने को ले चले, इतने ही में गुरु निष्ठ आगया, रोता हुवा दौड़ा और शव को रोक कर कहने लगा कि मेरे गुरु की आज्ञा है कि जब तू तीर्थ से लौट कर आवेगा, तब एक शिक्षा दूंगा। गुरु का यह वचन मिथ्या नहीं हो सकता। इसलिए तुम लोग उनको आसन पर लौटा ले चलो! लोगों ने बहुत कुछ कहा परन्तु न माना और गुरुके शरीर को फिर लाकर सिंहासन पर पधराया और विनय करने लगा कि अपने वचन को पालन कीजिये, मेरी आशा लग रही है। गुरुजी उसका विश्वास देखकर अति प्रसन्न हो जी कर उठ बैठे और साधु सेवा करनेके लिये शिक्षा की। गुरुनिष्ठ कहने लगा कि आप तो परम धाम को जा रहे हैं, मेरी साधु सेवा कौन देखेगा। गुरु इस वचन और चतुराईसे अधिक प्रसन्न हो एक वर्ष और जीते रहे।

भक्त एक गुरु निष्ठ, मात्र गुरु सेवा कीन्ही।
अन्य सन्तकी सेव, भूल मन वृत्ति न दीन्ही॥
त्यागे गुरु जी प्राण, शिष्य हट करि लौटाये।
लीन्हा शुभ उपदेश, सन्त सेवा दिखलाये॥
एक वर्ष गुरु जी जिये, परमधाम पीछे गये।
भोला! चेला धन्य सो, जिसने गुरु निज वश किये॥

शरणागत भक्त रघुनाथ

बंगाल प्रान्त के हरिपुर नामक ग्राम में कृष्ण चन्द्र महापात्र नाम के एक धनी जमींदार रहते थे। ईश्वर कृपा से घर में किसी बात की कमी न थी। हाथी घोड़े नौकर चाकर दास दासी सभी बातें

मनोनुकूल थीं, अतिथि अभ्यागत की कलरव ध्वनि से अतिथि शाला भी सदा जागृत रहती थी, हवन और धूप के पवित्र सौरभमय धूम से तथा ब्राह्मणों के स्तुति पाठ की मंगल ध्वनि से देवालय सदा परिपूर्ण रहता था। ग्राम में सभी उनकी प्रशंसा किया करते। इतना होने पर भी कृष्णचन्द्र महापात्र को तथा उनकी पत्नी कमला को एक बड़ी चिंता ने घेर रखा था। वह चिन्ता थी केवल पुत्र की। एक पुत्र के बिना यह सब सामग्री उनको निरर्थक प्रतीत होती थी। इस प्रकार कितने ही दिन बीतने पर कमला ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया रघुनाथ। एक समय एक ज्योतिषी ने रघुनाथ को देख कर बताया कि यह एक परम भगवद्भक्त होगा इस लिये इसका अनादर कभी न होना चाहिये। रघुनाथ माता पिताको अपनी बाल लीलाका आनन्द देते हुये द्वितीया के चन्द्रमा की त्यों बढ़ने लगा। कभी कभी खेलता २ मन्दिर के सन्मुख जाकर भगवान् को प्रणाम कर नाचता और तुलसी की क्यारियों की परिक्रमा दिया करता। माता पिता और देखने वालों के आनन्द का पार नहीं रहता। दर्शकगण भी कहा करते कि यदि यह बालक जीवित रहा तो एक महान भगवद्भक्त होगा।

देखते २ रघुनाथ ने बाल अवस्था से युवा में पदार्पण किया। पुत्र की युवावस्था देख कृष्णचन्द्र और कमला को विवाहकी चिन्ता होने लगी। खोजते २ मध्य बंगाल के कलावतीपुर के गंगाधर करण की कन्या अन्नपूर्णा ही रूप गुण में रघुनाथ के उपयुक्त सबको पसन्द पड़ी। विवाह सम्बन्ध स्थिर होगया। शुभ लग्न में नाच गान और आमोद प्रमोद के साथ विवाह कार्य सम्पन्न हो गया। वर वधु विदा हो अपने घर आगये पुत्रवधु का मुख सरोज देखकर कमला के आनन्द का पार नहीं रहा।

कृष्णचन्द्र के घर में अब कोई बात की कमी नहीं है। सब प्रकार के आनन्द से घर परिपूर्ण है। लेकिन विधाता को यह गति नहीं रुची। भाग्य चक्र ने पलटा खाया। उनकी जमींदारी में अकालों पर अकाल पड़ने लगे। किसानों से लगान वसूल नहीं हो सका। स्वाभाविक दया के कारण वे अपने किसानों पर अत्याचार नहीं कर सके बल्कि ऐसे घोर संकट के समय में अपने खजाने से उनकी सहायता करने लगे। धीरे २ खजाना भी खाली होगया। अपनी जागीरदारी को मिथ्या मान आबरू उसी प्रकार स्थाई रखने के लिये खर्च भी पूर्व से लगाते रहे। फल यह हुवा कि कृष्णचन्द्र अकारण ही ऋण के नीचे दबने लगे। चिन्ता से शरीर जर्जरीभूत हो गया। अनेक रोगों ने आकर निवास कर लिया अन्त में मरणासन्न होगये तब अपने प्रियतम पुत्र रघुनाथ की गोदी में सिर रख कर बोले, "बेटा! मैं तो जाता हूं, परन्तु मेरी एक बात रखना जहांतक बन पड़े मेरा ऋण चुका देना और देखना! अपने स्वार्थ के लिये कभी भी किसी को न सताना। इसीमें ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।" इस प्रकार पुत्रको अन्तिम आदेश दे कृष्णचन्द्र ने सदा के लिये आंखें बन्द कर लीं! पतिव्रता कमला भी पुत्र से विदा हो पति के साथ सती होगई। अचानक रघुनाथ पर दुःख दावानल का पहाड़ आ गिरा।

भगवान की बड़ी विचित्र लीला है। एक वृक्ष पर दो पुष्प खिले हुये थे, परन्तु न मालूम कहां से कालकीट ने आकर उसकी फूल में बासकर लिया। उन को पूर्ण रूप से खिलने भी नहीं दिया। बिचारे

अकाल में ही सूख कर गिर पड़े। परन्तु रघुनाथ अब तुम्हारे लिए खिलने का समय आगया है इस लिये खिलो। तुम भगवान् के भक्त हो रम्य कमल-पुष्प सदृश हो, दुःख दारिद्र्य के प्रचंड सूर्य ताप में तुम्हें खिलना होगा। तुम्हारे छिन्न मलीन वस्त्रों में से ही सैवाल से ढके हुये कमल के सदृश तुम्हारी शोभा फूट निकलेगी और तुम्हारे भक्ति सौरभ से सारा संसार भर जायगा तुम्हारे खिलने के दिन तो अभी आये हैं इसलिये खिलो रघुनाथ! तुम खिलो।

अन्नपूर्णा बड़े घर की लड़की थी। अपने माता पिता के सात पुत्रों से छोटी अन्तिम एक ही कन्या थी। विशेष दुलारी होनेके कारण प्रायः पिता के यहां ही रहती थी। गंगाधरकरण और उसके पुत्र अपने सद्गुणों की अपेक्षा धन संपत्ति के लिये ही ज्यादा प्रख्यात थे। रघुनाथ की स्थिती का हाल जान कर भी इन धन के कीड़ों ने उसे जरा भी सहायता नहीं दी।

रघुनाथ जी ने उत्तम कुल में होने से ऐसी दुःख दायक स्थिति होने पर भी अपने श्वशुर के पास सहायता की याचना नहीं की। सांसारिक मिथ्या ममता में न पड़' सारी सम्पत्ति वेचकर रघुनाथ ने पिता का ऋण चुका दिया और ससुराल से दहेज में जो कुछ मिला था उससे देश सेवा का नियमित प्रबन्ध कर एक फटा कंथा और कोपीन ले घर से निकल पड़ा। रघुनाथ गांव २ भीख मांग कर निर्वाह करने लगा। बड़े घरका बालक होने से 'दुःख किसे कहते हैं' यह जानता भी नहीं था। इस समय उसके कष्ट की कोई सीमा नहीं है!

एक दिन रात्री को एक वृक्ष के नीचे बैठ रघुनाथ विचार करने लगा, "इस पूकार पशु की भान्ति आहार निद्रा का सेवन करते हुए जीवन बिताने से क्या लाभ है? इस लिये किसी पुण्य क्षेत्र में चलकर भगवान का भजन कीर्तन करते हुए जीवन बिताया जाय तो अच्छा हो।" यह विचार कर रघुनाथ पूर्ण श्रद्धा भक्ति से नीलाचल (पुरी) की तरफ चल पड़ा और मन्दिर में पहुंच भगवान् का दर्शन कर सरलता पूर्वक हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा।

"हे प्रभु! मेरे माता पिता दोनों ही मुझे अनाथ छोड़ परलोक चले गये हैं आज मैं रघु अरक्षित याने रक्षण हीन होगया हूं। अब तो केवल आप के पाद पद्मों में ही शरण लेने की इच्छा है। किन्तु नाथ! मेरी इच्छा से क्या होता है, आप की इच्छा ही सच्ची इच्छा है। अब आप जैसे चाहें वैसे करें। लेकिन इस बातको समझ लें कि मैं असहाय किंकर आप के शरणागत हूं।"

जहां पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से सरल हृदय की सच्ची पुकार होती है वहां भगवान् उत्तर देते हैं। रघुनाथ को प्रतीत हुवा मानो भगवान् उसे कहते हैं, 'रघु! तुझे कोई भय नहीं है। तू यहां महाप्रसाद भोजन करता हुवा परम सुखसे रह। मैंने तुम्हें अपने सेवक की तरह स्वीकार करलिया है।" अब रघुनाथ जहां महाप्रसाद मिल जाय वहीं ग्रहण कर नित्य प्रभु के मुख पद्म का दर्शन और उनके गुणों का चिन्तन करता हुवा परम सुख पूर्वक वहां रहने लगा। पुरानी बातें सभी विस्मृत होगई। यहांतक कि वह अन्नपूर्णा का प्रफुल्ल सरल मुख कमल भी भूल गया।

धीरे २ यह समाचार कलावतीपुर में रघुनाथ के ससुराल में भी जापहुंचा। गंगाधरकरण रघुनाथ को अनेक प्रकार कुवचन कहते हुए अपने स्त्री पुत्रों

से परामर्श कर रहे थे कि अब क्या करना चाहिये। गंगाधर ने प्रस्ताव किया कि अन्नपूर्णा को उस दुष्ट के साथ छोड़ने की अपेक्षा उसे कंवारी समझना ठीक है और फिर से उसका विवाह संस्कार करने की तैयारी करनी चाहिये। 'यथा राजा तथा प्रजा' सबने एक स्वर से इसका अनुमोदन भी कर दिया। वर शीघ्र मिल गया। राज मन्त्री वसुमहापात्र के दुराचारी और अकर्मी पुत्र के साथ अन्नपूर्णा का पुनर्लग्न होना निश्चित होगया। दोनों पक्ष ही धनवान् थे इससे किसी की भी इस अनुचित कार्य को रोकने की हिम्मत नहीं हुई। विवाह तिथि फाल्गुन शुक्ला पंचमी निश्चित होगई।

अन्नपूर्णा भी अब अबोध बालिका नहीं थी। सयानी होगई थी। अपने माता पिता और भाइयों का विचार सुनकर उसे अतिशय दुःख हुआ। इधर विवाह की तैयारियां होने लगीं, उधर अन्नपूर्णा के मन में सांप लोटने लगे। वह मन ही मन में प्रभु से प्रार्थना करने लगी, "हे प्रभु! हे दीनदयालु! हे गजेन्द्र उद्धारक! हे द्रौपदी की लज्जा रखने वाले नाथ! क्या मेरे प्राण नाथ के जीते जी ये दुष्ट मेरा पुनर्लग्न करेंगे? आप के रहते यह असम्भव घटना घट जायगी? हे करुणासागर! मैं व्यभिचारिणी नहीं, सती हूं। इस संकट से मेरा भी उद्धार कीजिये नाथ!" अन्नपूर्णा आहार निद्रा, हास्य कौतुक सब कुछ छोड़कर अहर्निश भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना किया करती।

बाल अवस्था में खिलाने वाली एक वृद्ध दासी अन्नपूर्णा को बहुत प्यार करती थी। अन्नपूर्णा भी अपने दुःख सुख की बात उसे ही कहा करती। अन्नपूर्णा के कहने से दासी ने नीलाचल जाने वाले यात्रियों की खोज करके उसे खबर दी। यह खबर सुनते ही बिना विलम्ब किये अन्नपूर्णा ने अपने स्वामी के नाम सब समाचारों का एक पत्र लिख दिया और यह भी लिख दिया कि यदि आप अन्तिम समय तक भी आकर दासी की रक्षा न लोगे तो मैं आत्मघात करके प्राण त्याग कर दूंगी। अपने स्वामी का नाम ठिकाना और चिन्ह बता कर अति विनता के साथ अन्नपूर्णा ने दासी के हाथ वह पत्र यात्रियों के पास पहुंचवा दिया।

यात्री लोग श्रीधाम में पहुंच कर भगवान् का दर्शन कर अपने को कृतार्थ मानने लगे। ढूंढते २ एक दिन रघुनाथ की उनसे भेंट होगई। अति आदर से उन्होंने वह पत्र उसे देदिया।

रघुनाथ पत्र पढ़ कर विवाह के केवल १० दिन समझ कर और कलावतीपुर का एक मास का मार्ग जान कर चिन्ता में पड़ गया। दूसरा कोई उपाय न देख भगवान् की शरण में आ सिंह द्वारपर पड़ रहा थकावट के मारे पड़ते ही घोर निद्रा आगई। श्री जगन्नाथ जी अपने भक्तको दुःखी देख अपनी माया से उसे सिंहद्वार पर से कलावतीपुर में गंगाधरकरण के द्वार पर पहुंचा दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल जागृत होते ही रघुनाथ विस्मय में पड़गया और पूछने पर अपने को ससुराल के द्वार पर पहुंचा देख प्रभुकी लीला समझ, मन ही मन आनन्दित होता हुवा उन्हें अनेक धन्यवाद देने लगा।

उसी समय उस के कुछ सालों ने घर से निकलते समय दूर से ही उसे पहचान कर घर में जा कर अपने माता पिता और बड़े भाइयों से रघुनाथ के आने की सारी खबर कह सुनाई। यह खबर सुनते ही अन्नपूर्णा आनन्द से गद्गद हो हृदय में ही

भगवान को धन्यवाद देने लगी। परन्तु करुण परिवार का मुख सूख गया लोक लज्जा के डर के मारे जमाई को घरके भीतर ला कर स्नान मार्जन कराने के अनन्तर सुन्दर वस्त्र पहना कर, भोजन करने बैठाया। रघुनाथ अपने ईष्टदेवको अर्पण कर भोजन करने लगा और ससुराल वाले हृदय में हलाहल रखकर ऊपर से मीठी बातें बनाने लगे। भोजन के बाद रघुनाथ को विश्राम करने के लिये भेज दिया गया।

(अपूर्ण)

आवाहन

[ले० श्रीमदनगोपाल "सिंहल"]

जैसी होली बार बार ब्रज माहीं मचवाई।
वैसी होली एक बार फेर तो मचाओ श्याम॥
भारत निवासियों में आज वो उमङ्ग नहीं।
होली के ही मिस इन सोयों को जगाओ श्याम॥
भर भरवा के प्रेम-रङ्ग पिचकारियों में।
सारा ही जगत प्रेम रंग में रंगाओ श्याम॥
प्रेम को त्योहार प्रेम पूर्वक मनवानें।
भारत में एक बार फेर आही जाओ श्याम॥

फूट गई मटकी

[ले० बहिन श्री जयदेवी]

फाल्गुन पूर्णिमाका दिन था सर्वत्र होरही थी होली! एक ग्वालन थी निपटही भोली? नहीं जानती थी क्या है हँसी क्या है ठठोली! सदा माला घुमाया करती थी भगवन्नाम-जपा करती थी, भगवत्प्रेम में सर्वदा चूर रहा करती थी! न मालूम क्या धुन समाई घरवालों से आंख बचाई, मटकी शिर पर उठाई पनघट की राह सिधाई न तनिक भी सुध थी पटकी मनमोहन के प्रेम में चित्त वृत्ति थी अटकी भूल गई थी कहां रक्खी हुई है मटकी, संभाल कुछभी नहीं थी घूंघटकी, सड़क पकड़ली थी पनघटकी! नहीं मालूम मन में क्या २ विचार आते थे चले जाते थे! कभी आशा पड़ जाती थी, कभी निराश बढ़जाती थी विचार के पीछे विचार करती चलीजाती थी!

विचार-शास्त्रों से सुनती हूं कि भगवान् निर्गुण, निर्विकार हैं निराकार निराधार हैं, न विशेष हैं न निर्विशेष हैं मनवाणी के अविषय हैं ऐसे भगवान् का जन्म होना असम्भव है! अजन्मा का जन्म सुनकर धीरसे धीर पुरुष की बुद्धि भी चक्कर खाजाती है समझ नहीं पाती है, कि निर्गुण, सगुण कैसे होसकता है निर्विकारी, विकारी कैसे होसक्ता है निराकारी आकार कैसे धारण कर लेता है यह बात समझ से बाहर है ही, फिर किसी की समझ में कैसे आवे? संत महात्माओं के मुखसे सुनती हूं कि निराधारी, भक्तन् गिरधारी रूप धारण करके वृन्दावन में घूमते रहते हैं, इस लिये भक्त उनको बनवारी, ब्रजविहारि-नाम से पुकारते हैं, परन्तु उनके चरित्र सुन कर बुद्धि मोहित होती है, कभी किसी ग्वालनका मक्खन चुरालाते हैं, कभीकिसी की मटकी फोड़ देते हैं, कभीकिसी के चीर हरण कर लेजाते हैं, इससे तो सिद्ध होता है कि वे ईश्वर नहीं हैं, काली नागको नाथलिया, पूतना को मार दिया, और भी कई बड़े दैत्यों का वध कर चुके हैं, गिरीराज को अंगूठे पर उठा लिया, इन्द्र का मान मर्दन किया! इस से उन की ऐश्वर्यता सिद्ध होती है? चिरकाल

से उनके दर्शनकी अभिलाषा है, परन्तु मुझ अभागिनी को अभी तक दर्शन न हुये ! हां कहां से, सासु है पूर्ण अविश्वासु किसी का विश्वास ही नहीं करती, जिठानी अपनेको समझती है सेठानी सब काम काज लेन देन अपने हाथमें रख छोड़ा है ! देवरानी है बड़ी सयानी जेठानी की सैन सैन मिला रक्खी है, रसोई पानी कर दिया और अपना सीना पिरोना ले बैठी ! नंदों को है आनन्द, काम काज कुछ है नहीं कौन क्या कर रहा है, यही देखती रहती हैं जो कुछ देखती हैं पुरुषों से कह देती हैं घर से बाहर न तो आप जाती हैं न दूसरों को जाने देती हैं पानी वाला पानी भरजाता है, खाने पीनेके सब पदार्थ पुरुष लेआते हैं फिर घरमें से निकलना कैसे होसकता है है भी ठीक ही स्त्री जाति तो घर में बैठने के लिये ही बनाई है, घर वाली उसका नामही है ! न मालूम आज किसने मेरे चित्त को फेर दिया, जो सबकी आंख बचाकर चली आई हूं ! कहीं पनघटदेव प्रसन्न होकर भगवान के दर्शन करादें तो करादें परन्तु मेरा भाग्य ऐसा कहां है ! बड़े २ योगियों मुनीश्वरों को भगवान का दर्शन ध्यान में होना कठिन है, तो प्रत्यक्ष तो हो ही कैसे सकता है जिनका दर्शन बड़े २ तप करने से बड़े बड़े मुनियों को नहीं होता। उनका दर्शन मुझ मंद बुद्धि वाली नारी जाति को कैसे हो सक्ता है परन्तु शास्त्रों से ऐसा सुननेमें आता है, कि भगवान् यज्ञसे, तपसे, दानसे प्राप्त नहीं होते केवल प्रेमसे प्राप्त होते हैं, प्रेमही भगवन् को प्यारा है कहावत भी है, बिना प्रेम रीझे नहीं नागर नन्द किशोर ! भगवान् जाति पांत भी नहीं देखते, उच्च कुल वर्ण भी नहीं देखते ! वेदों के अध्ययन करने से भी नहीं प्राप्त होते, केवल अनन्य भक्ति से प्राप्त होते हैं ! पापी पुण्यात्मा भी भगवन् नहीं देखते, क्योंकि उनके संमुख होते ही करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं ! तब क्या आज दर्शन देंगे, आहा ! बांई आंख तो फड़कती है। इससे तो जान पड़ता है कि मेरा मनोरथ सिद्ध होगा परन्तु मेरा भाग्य ऐसा कहां है ! आंख तो फड़काही करती है ? पापी के सब मनोरथ निष्फल होते हैं भगवन् दर्शन के योग्य मुझ में प्रेम कहां है ? कभी प्रेम करती हूं धनमें, कभी प्रीति करती हूं तनमें, सदा ही आसक्ति बनी रहती है इस नश्वर तनमें, फिर भगवन् कैसे मिल सक्ते हैं ? परन्तु यह पुरानी कहावत है, कि जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है, वह उसको अवश्य प्राप्त होता है ! सच्चे स्नेही को भगवान् मिले बिना नहीं रहसक्ते परन्तु मुझमें सत्य स्नेह भी कहां है ? तब मेरा मनोरथ निष्फल ही है।

इस प्रकार विचार करती हुई ग्वालन पनघट पर आगई है, पानी खेंचना आता नहीं है। जैसे तैसे दो तीन गगरी खेंच कर मटकी भरली है ! इधर उधर देखती ताकती मटकी शिर पर धरली है और मतवालीसी घर की तरफ मुख करके चलदी है ? इतने ही में आवाज हुई है तड़ाक मटकी गिर पड़ी है पड़ाक ? ग्वालन शिरसे पैर तक पानी में होगई सराबोर पीछे फिरकर देखती है तो ठाढ़े हैं मक्खनचोर ! मन-मोहन की छटा उस समय निराली है, पांच वर्ष की अवस्था वाली है, हाथमें लकुटिया कानोंमें बाली है। शिर पर लटें घूंघर वाली हैं। माथे पर है काला गोल तिलक, मानो ब्रह्म को एक अंश में माया ने लिया है ढक ! कमर में घोंटुओं तक पहन रक्खा है घुटन्ना, पैरों में महावर है नन्हा मुन्ना, जैसा तेज मुरारी का उसका करोड़वां अंशभी नहीं तेज तमारी का। जैसी शीतलता है नट नागर सुखकर में, उसका करोड़वां

ऐसा भी नहीं है हिमकर में ! जो लावण्यता है घन-श्याम की, ऐसी नहीं है करोड़ों कामकी ?

ग्वालन की दशा इस समय और है, प्रेम में हुई भोर है। साढ़े तीन करोड़ नाड़ियां आल्हाद से पूर्ण होकर फड़कने लगीं हैं, अपार हर्ष के कारण दशमी अवस्था प्राप्त होने वाली है, यद्यपि भोली भाली है परन्तु अपनी दशा संभाली है ! भीतर से होरही है निहाल, ऊपर से रूठसी हुई कहती है आंखें निकाल ?

ग्वालनः-हे नन्द योशादा के लड़ेते ! होली के मते ! आपकी मेरी क्या है जान पहिचान, जो आपने मारी है लकड़ी तान मेरी मटकी है तोड़ गिराई, इसने तो लोग मेरी घर बाहर में हंसाई ! सास देगी गारी, ननदें देंगी तारी, जेठानी करेंगी ख्वारी, देवरानी हंसेगी ठाड़ी ठाड़ी। पुरुष कर देंगे घर से न्यारी, पति से भी बाहर कर दी जाऊंगी, दीन की रहूंगी न दुनियां की, द्वार २ धक्के खाता फिरूंगी। आप को क्या था अधिकार, जो आपने किया मेरा पटराधार, आपने मटकी क्या फोड़ गिराई, मुझे दिया है धूर में मिलाई। सच कहती हूं या झूंठ, कहिये कुंवर कन्हाई. क्या आप ने यह नहीं कीन्ही ढिठाई ?

भगवान् कहते हैं हंस कर, ग्वालन ! बातें बनाना छोड़ दे, बस कर। मैंने कुछ नहीं की है ढिठाई, तूने आप ही अपनी की है हंसाई। अपने हाथों ही अपनी आपत्ति है बुलाई, क्यों तू घर से निकल कर आई ? स्त्री को चाहिये रहना घर, नहीं आना चाहिये बाहर, आवे तो आना चाहिये किसी को साथ लेकर तू अकेली क्यों चली आई ? क्या तुझे मालूम नहीं था कि आज हो रहा है होली, फिर दीवानी क्यों बन गई भोली, जा अकेली ही घर से निकल भागी, लोक लाज त्यागी. बड़े घर की बहू बेटियां अकेली घर से पैर नहीं देती, यदि आती हैं तो पति पुत्रादि को साथ में ले लेती हैं, यह शिष्ट पुरुषों की मर्याद है। तूने लोक मर्यादा तोड़कर किया महान् अपराध है, तूने किया काम अनुचित है जो भी तुझे दंड मिले सब ही उचित है। मैं ने स्त्री जाती को पराधीन बनाया है, बालपन में पिता के आधीन, युवावस्था में पतिके आधीन, और वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन स्त्री को रहना चाहिये; यह शास्त्र मर्यादा है। जो शास्त्र मर्यादा के बाहर पैर रखते हैं वे स्त्री पुरुष अवश्य दंड पाते हैं इस लिये तुझे दंड देने के लिये मैंने तेरी मटकी फोड़ दी है। जो लोग अपने वर्ण, आश्रम, जाति, कुल की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं। वे अवश्य दंड देने के पात्र हैं वर्णाश्रमादि ही शिष्टाचरण और धर्माचरण के लिये सेतु हैं, इनके बिना कोई भी शिष्टाचरण धर्माचरण नहीं कर सकता, जो शिष्टाचरण और धर्माचरण पालन नहीं करता, वह अवश्य नरक का भागी होता है। जो शिष्ट पुरुष धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र का अनुसरण करते हैं। वे ही संसार में प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं तथा सुख भोगते हैं और वे ही अन्त में सुख्य अखण्ड आनन्द स्वरूप को प्राप्त होकर सर्वदा के लिये सुखी होते हैं। वर्णाश्रम धर्म को उल्लंघन करके कोई कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता, जो अपने वर्णाश्रमधर्म पर आरूढ़ हैं वे ही मेरे भक्त हैं वे ही मेरे प्यारे हैं, वे ही संसार में अनेक प्रकार का सुख ऐश्वर्य भोग कर अन्त में सुख स्वरूप मेरे धाम को प्राप्त होते हैं। तूने भी कुल मर्यादा का उल्लंघन कियाहै, इसलिये दण्ड की पात्र है।

स्त्री को किसी अवस्था में भी स्वच्छन्द होना

उचित नहीं है, जो स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है। अवश्य भ्रष्टाचरण होती है और नरक में जाती है यद्यपि स्वतंत्र होना अच्छा है परन्तु बन्धन में पड़े बिना कोई स्वतंत्र नहीं होसकता, जो बन्धन में पड़ता है, वही सुखी होता है। कारण यह है कि मैं ही एक स्वतन्त्र हूं, मेरे सिवाय ब्रह्मा से लेकर चींटी तक कोई स्वतन्त्र नहीं है, जो बन्धन में पड़ कर भी मुझ स्वतंत्र परमेश्वर की आराधना करता है, मैं उसे शीघ्रही बन्धन से मुक्त कर देता हूं यह बात छुपी नहीं है, सब शास्त्र द्वारा पूसिद्ध है। लोक कहावत भी है।

हरि को भजे सो हरि का होई।
जात पाँत पूछे नहीं कोई॥

जो मुझको भजता है, अवश्य मुझको प्राप्त होकर मेरा ही स्वरूप हो जाता है। मेरी तेरी जान पहिचान सनातन है, मेरे ही सब अंश हैं, सब पर मेरा ही अधिकार है।

दुष्ट प्रकृति वाले पुरुषों को जेल में जाने से भी लज्जा नहीं आती। भले मानस को तो एक वचन ही बहुत होता है। घट टूटने से तो ग्वालन के ऊपर एक मटके का जल ही पड़ा था परन्तु भगवान् के वाक्य रूप दंड लगने से तो ग्वालन के बदन पर सैकड़ों घड़े पानी पड़गया है। अपना अपराध समझ कर ग्वालन पानी २ होगई है लेकिन चतुर भगवान के वाक्य में से ही युक्ति निकाल कर हाथ जोड़ कर कहती है:-ग्वालन- हे भगवन्। आपने जो कुछ कहा ठीक ही है मुझ से अवश्य अपराध बन आया है। परन्तु मैंने किसी संसारी कामना के लिये तो लोक मर्यादा का त्याग नहीं किया केवल आप के प्रेम वश होकर मुझ से ऐसी भूल होगई है। आप का रूप अनूप है ही ऐसा जो बलात्कार से अपने भक्तों को अपनी तरफ खैंच लेता है, आप के रूप अनूप की जब यह महिमा है तो आप मुझ को क्यों दोष देते हैं आप का रूप आप के चरित्र मैंने शास्त्रों द्वारा सुने थे, इसी कारण मुझे आप के दर्शन की उत्कट उत्कंठा हो आई और अपनी पराई सुध भूलकर, लोकलाज छोड़ कर सीधी पनघट को चली आई, इस में मेरा क्या अपराध है? यदि मैं न आती तो आप का रूप अनूप मैं कैसे देख पाती? शास्त्रों में सुना है कि आपका दर्शन अमोघ है, प्रत्यक्ष में भी ऐसा ही अनुभव कर रही हूं, अब तो आप को मुझे अपनाये ही बनेगी, आप के सिवाय अब मैं अन्य का तो ध्यान करने वाली नहीं हूं, आप सब जानते ही हैं। आप को घट २ की खबर ही है, हे करुणाकर! मुझे अपनाइये और अनन्य भक्ति का वर दीजिये।

जैसे सर्वदा मर्यादा में रहने वाला कभी भी मर्यादा न त्यागने वाला समुद्र पूर्ण चन्द्र को देखकर अपनी मर्यादा छोड़ कर उछलने लगता है। इसी प्रकार पूर्णानन्द के सागर भगवान् का हृदय भी, ग्वालन के अपूर्व प्रेम को देख कर द्रवीभूत सा हो आया है और अति प्रसन्न हो कर भगवान् इस प्रकार कहते हैं:

भगवान् हे कल्याणी! जैसा तू मुझे देख रही है, यह मेरा स्वरूप मायामय है, माया बिना कोई भी इस प्रकार मुझे नहीं देखसकता, तुझ सरीखे अनन्य भक्तों को माया से मुक्त करने के लिये ही मैं निर्गुण, अजन्मा होकर भी सगुण रूप से जन्म लेता हुवासा प्रतीत होता हूं। वस्तुतः मेरा जन्म नहीं है, मेरा जन्म कर्म दिव्य है, जो इस बात को जान लेता है वह मुझ को प्राप्त होकर मेरा ही स्वरूप हो जाता है। तू ने मेरी प्राप्ति के लिए लोक मर्यादा का त्याग

किया है इसलिये तू निर्दोष है कोई शिष्ट पुरुष तुझे दोषी नहीं कह सकता, तू जो घर छोड़ कर पनघट पर मेरे दर्शन करने आई यह भी तेरी भूल ही थी, इसलिये मैंने तुझे वाक्य दंड दिया है। अज्ञानवश तू ने ऐसा किया इसी कारण तेरा अपराध नहीं है, अज्ञानवश जीव अनेकों अनुचित कार्य करता है और उनका दंड भी भोगता है। यदि तू मेरे निज स्वरूप को जानती तो यहां क्यों आती और मुझे इतना क्यों कहना पड़ता, मैं तो सब के हृदय में विराजमान हूं, यदि तू ऐसा जान कर प्रेम करती तो मैं तेरे पास ही था, घर पर ही तुझे मेरा दर्शन होजाता, खैर ! अब जो कुछ हुवा सो हुवा, जैसा तू ने कहा, 'मेरा दर्शन अमोघ है' अब तुझे माया मोहित नहीं कर सकेगी। अब तू घर पर जाकर, घर में रह कर अपने हृदय में मेरा ध्यान कर मैं तुझे हृदय ही में मिलूंगा और पश्चात् सर्वत्र चराचर ब्रह्मांड में तुझे मेराही दर्शन होगा जैसे तेरा यह मिट्टी का घट फूट गया है, इसी प्रकारतेरी देहरूपी मटकी फूट जायगी और दिव्य देह रूप मटकी प्राप्त करके तू मुझ में मिल जायगी, देख ? जैसे पृथ्वी में से अनेक घट बनते और फूटकर पृथ्वी में ही लय होते रहते हैं, इसी प्रकार मुझमें से समष्टि व्यष्टि रूप अनेक देह रूप घट बनते रहते हैं और फिर मुझमें लय होते रहते हैं। घटका स्वरूप विचारने से तुझे अपने हृदय में और सर्वत्र मेरा दर्शन होगा अब तू अपने घर जा और घट के स्वरूप का विचार तब तक किया करियो, जब तक मैं तुझे सर्वत्र दिखाई न देने लगूं, तू बड़े घर की बेटी है बड़े कुलमें व्याही है, तुझे इधर उधर घूमना उचित नहीं है। परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, प्रेम से प्रकट हो जाता है। यद्यपि लोक के धर्म मिथ्या हैं तो भी मुझ सत्य स्वरूप को जो नहीं जानता उसके लिए मिथ्या नहीं है। जो लोक का स्वधर्म पालन नहीं कर सकता वह सब धर्मों से रहित मुझको प्राप्त नहीं हो सकता, लोक के धर्मों का पालन करना मेरी भक्ति है और मेरी प्राप्ति होने पर तो सब धर्म मिथ्या और कल्पित हो जाते हैं। देह मिथ्या है परन्तु जब तक देह है, देहके धर्म छुट नहीं सकते। देह और देह के धर्म कल्पित समझ कर करना और मुझे सत्य वस्तु रूप सब धर्मों से रहित जानना, इसीका नाम ज्ञान है और यह ही अनन्य भक्ति है जा अब तू घर और मेरे कहे का अनुसरण कर।

इतना कह कर बिजली के समान भगवान् हो गये हैं अन्तर्ध्यान। ग्वालन ने भी धरा घर का ध्यान, चल दी है रेल गाड़ी के समान अथवा छोड़ दिया है घोड़ा मैदान, किसी को खबर पड़ने नहीं दी है कानों कान, एकान्त है उसका स्थान नहीं है जहां दूसरी जान, पड़ा हुआ है सुनसान, करने लगी है वहां इस प्रकार ध्यान।

घट है मिट्टी का यह बात प्रत्यक्ष है, यानी मिट्टी है कारण और घट है कार्य, जो कार्य होता है अपने कारण में से आता है, कारण दो प्रकार के शास्त्रकारों ने माने हैं एक निमित्त कारण और दूसरा उपादान कारण, जिस वस्तु में से जो वस्तु बनती है और जिस में लय होती है वह उपादान कारण होता है। जैसे मिट्टी से घट बनता है और फूटकर मिट्टी में लय होजाता है इसीलिये मिट्टी घट का उपादान कारण है जो वस्तु से अलग रहकर वस्तु को बनाता है जैसे कुम्हार घट से अलग रह कर घट को बनाता है, इसी लिए कुम्हार घट का निमित्त कारण है। उपादान कारण में शास्त्रकारों का मत भेद है, कोई चार-

भक उपादान मानते हैं कोई परिणामी और कोई विवर्त उपादान कारण मानते हैं कई चीजें मिल कर एक कार्य का आरम्भ करें इसका नाम आरम्भकवाद है। जैसे बहुत से तन्तु मिल कर एक पट को आरम्भ करते हैं इसलिए तन्तु पट के आरम्भक उपादान कारण हैं, एक वस्तु अपना स्वरूप बदल कर दूसरे स्वरूप की हो जाय, इसका नाम परिणाम वाद है जैसे दूध का बदल कर दही होजाता है इसलिए दूध दही का परिणामी उपादान कारण है और एक वस्तु अपना स्वरूप न त्याग कर दूसरे रूप की दिखाई दे उसका नाम विवर्तवाद अथवा मायावाद है जैसे रज्जु अपना स्वरूप न त्याग कर किसी दोषसे सर्प दिखाई देने लगे तो रज्जु सर्प का विवर्त उपादान कारण है।

घट को विचार पूर्वक देखने से आरम्भक और परिणामवाद प्रत्यक्ष सिद्ध होते हैं क्योंकि घट कई कपालों, ठीकरों से मिलकर बना है इसलिये कपाल घट के आरम्भक उपादान कारण हैं और मिट्टी का गोला अपना स्वरूप बदल कर घट रूप हो कर पानी भरने आदि के काम में आता है इसलिये मिट्टी का गोला घटका परिणामी उपादान कारण है, यह बात तो लौकिक पुरुषों और दार्शनिक विद्वानों की समझ में सरल ही आजाती है, इसलिये लोक में विशेष करके आरम्भक और परिणामवाद प्रचलित हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो मिट्टी घट का आरम्भक अथवा परिणामी उपादान कारण नहीं है किन्तु विवर्त उपादान कारण ही है क्योंकि व्यवहार काल में थोड़े समय के लिये मिट्टी घटरूप से भासती है नहीं तो आदि अन्त में मिट्टी ही है, क्योंकि जो आदि और अन्त कालमें है वही वर्तमान में भी है चाहे अविचार से असली स्वरूप से न भासता हो, विचार करने से तो स्पष्ट होजाता है कि आदि अन्त और मध्य में एक ही वस्तु है, इस से सिद्ध हुआ कि मिट्टी घट का आरम्भक अथवा परिणामी उपादान कारण नहीं है, किन्तु विवर्त उपादान कारण ही है, यानी मिट्टी होने पर भी व्यवहार काल में थोड़े दिनों के लिये मिट्टी का घट नाम से व्यवहार होता है। इसलिए मिट्टी सत्य है और घट कल्पा हुआ यानी मिथ्या है। इस प्रकार युक्ति से घट का मिथ्यापना सिद्ध होता है, श्रुति से भी यही बात सिद्ध होती है क्योंकि श्रुति कहती है कि घट सरावादि विकार नाम मात्र होने से मिथ्या हैं, वस्तुतः मृत्तिका ही सत्य है इस प्रकार श्रुति से और युक्ति से घट का मिथ्यापना सिद्ध होता है और मिट्टीका सत्यपना सिद्ध होता है।

जैसे मध्य काल में ही भासने से घट मिथ्या है इसी प्रकार मेरा व्यष्टि रूप देह और समष्टि रूप जगत सर्वदा नहीं भासता, इसलिये मिथ्या ही है, स्वप्नावस्था में स्थूल देह और जाग्रत जगत नहीं भासता सुषुप्ति में स्वप्नके पदार्थ और सूक्ष्म जगत नहीं भासता और समाधि यानी बुद्धिकी निर्विकल्प अवस्थामें अज्ञान भी नहीभासता, इस लिये व्यष्टि समष्टि अज्ञान, व्यष्टि समष्टि सूक्ष्म शरीर, व्यष्टि समष्टि स्थूल देह और जगत मिथ्या है, केवल इनका और इनके अभाव का साक्षी मेरा आत्मा ही सच्चा है, आत्माके अज्ञान से सर्व प्रपंच भासने लगता है और आत्मा के ज्ञान से प्रपंच का कहीं पता भी नहीं लगता, इसलिये आनन्द स्वरूप आत्मा ही सच्चा है, और समस्त सूक्ष्म, स्थूल जगत शश शृंग अथवा बंध्या पुत्र के समान मिथ्या है।

इतना विचारते ही जैसे कोई सोते से जग

जाता है, इसी प्रकार बड़भागिनी ग्वालिन आत्मतत्व देख गई है और फूट गई, फूट गई, फूट गई, ऐसा कहते हुये नीचे के पद गाने लगी ।

टूटगई फूटगई, छूटगई मटकी ।
चूरभई धूरभई, दूरभई मटकी ॥
जीर्णभई क्षीणभई लीनभई मटकी ।
जय, जय, जय, श्यामावर नागर नर मटकी ॥१॥

दुखी भई दीन भई, द्वार द्वार भटकी ।
सुखीभई शान्तभई, चिन्ता भय सटकी ॥
अजरभई अमरभई, अधर भई मटकी ।
जय, जय, जय, मायावर मायाहर नटकी ॥

पूर्ण भई पक्वभई, दिव्य भई मटकी ।
मोदमयी बोधमयी, स्वाद मयी मटकी ॥
शुद्धभई बुद्धभई, मुक्त भई मटकी ।
जय, जय, जय लीलाधर लीला नर नटकी ॥३॥

ध्यान मयी, ध्यातृ मयी, ध्येयमयी मटकी ।
ज्ञानमयी, ज्ञातृमयी, ज्ञेयमयी मटकी ॥
मानमयी, मातृमयी, मेय मयी मटकी ।
जय, जय, जय योगीवर, भोगी वर नटकी ॥ ४ ॥

ब्रह्ममयी, विष्णुमयी, रुद्रमयी मटकी ।
अग्निमयी, सूर्यमयी, चन्द्रमयी मटकी ॥
देशमयी कालमयी, वस्तुमयी मटकी ।
जय, जय, जय विश्वम्भर, माया पर नटकी ॥५॥

शब्दमयी, ज्ञानमयी अर्थमयी मटकी ।
वाक्यमयी वेदमयी, वेद्यमयी मटकी ॥
वर्णमयी, गद्यमयी, पद्यमयी मटकी ।
जय, जय, जय, शब्द ब्रह्म अक्षर पर नटकी ॥६॥

कर्ममयी, योगमयी, सांख्यमयी मटकी ।
स्वर्गमयी सिद्धिमयी, मोक्षमयी मटकी ॥
एकमयी शेषमयी, सर्वमयी मटकी ।
जय, जय, जय, सर्वपूर्ण, सर्वशून्य नटकी ॥७॥

भाई बहिनो ! यह बहन तो जाग गई और सुखी हुई, क्या हम तुम अज्ञान की नींद में पड़े सोते हुये जन्म मरण के चक्र में पड़े हुये आधि व्याधि आदि अनेक कष्ट पाते ही रहेंगे । नहीं, नहीं । हम सब को भी क्षणभंगुर दुःख रूप संसार से मुख मोड़ कर, आनन्द स्वरूप भगवान् की शरण लेकर सर्वदा के लिये सुखी हो जाना चाहिये, श्रुति भेददर्शी अज्ञानी के लिये भय दिखलाती है, इसलिये सब में राग द्वेष छोड़ कर सब का मंगल चाहती हुई, भगवत शरण होकर मनुष्य जन्म सार्थक करलो और अखंड आनन्द स्वरूप हो जाओ ।

ॐ सर्व मंगलमस्तु !

कैसे ?

[ले० श्री मदनगोपाल जी 'विह्वल']

आओ आओ गाते गाते कण्ठ भी ये सूख गया ।
होली के क्या गीत प्यारे श्याम अब गायगे ॥
तेरा ध्यान कर नित आंसू न बहात नैन ।
फेर पिचकारियों से रंग क्या बहायेंगे ॥
तेरे ही वियोग की हीये में जल रही आग ।
लकड़ी के ढेर ही क्या होली में जलायेंगे ॥
प्रेम का त्योहार बिन तेरे प्रेम अवतार ।
भला कहो कैसे यह आरती मनायेंगे ॥

स्त्री कर्तव्य

[ले० श्री सर्वदासीदेवी जी]

दोपहर का समय है संसार अपने २ कार्यों में संलग्न है प्रातःकाल के कार्यों से निवृत्त होकर स्त्रियां अपनी २ सहेलियों से वार्तालाप कर रही हैं प्रिय पाठिकाओ । देखिये इस गृह के एक कमरे में दो स्त्रियां बैठी हैं एक के हाथ में पुस्तक व दूसरी के हाथ में कुछ सीने की वस्तु है । बड़ी का नाम ज्ञानवती व छोटी का शीलवती है इन दोनों में निम्न लिखित वार्तालाप होरहा है :-

शीलवती-बहिन तुमने कल कहा था कि मैं तुम्हें कल स्त्री कर्तव्य पर कुछ बातें बताऊंगी सो आज अपना वचन पूरा करो ।

ज्ञानवती-हां बहिन ! मुझे इस बात का अतिहर्ष है कि तुम्हारा ध्यान अच्छी बातोंकी ओर आकर्षित होता है और निरर्थक बातें जैसी कि स्त्रियों में अक्सर हुआ करती हैं तुम नहीं पड़तीं । बहिन . स्त्रियोंको चाहिये कि सदैव कुसंगति से बचती रहें और जितना समय उनको गृह कार्यों व बड़ों की सेवा के पश्चात् मिले उसे धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में लगावें । एक पल भी व्यर्थ न जाने दें क्यों कि मनुष्य जीवन का एक २ पल अमूल्य है इसलिये उसको सदुपयोग में लगाना चाहिये । धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने व सुनने से ज्ञान बढ़ेगा जिससे संसार के दुख सुख व्याप्त न होंगे और समय भी नष्ट न होगा । जिस ईश्वर ने हमको उत्पन्न किया और समय २ पर हमारी रक्षा करता है नाना प्रकार की वस्तुएं हमारे आराम के लिये उत्पन्न की हैं उस ईश्वर को भूल जाना महापाप है । यदि संसार के कामों में सारे दिन अविश्रांत परिश्रम कर सकती हो तो क्या ईश्वर के लिये दो घन्टे भी समय सार्थक नहीं कर सकतीं ? बल्कि संसारिक कार्य करते हुए भी सदैव उसका ध्यान रखना चाहिये । मंगलमय ईश्वर का ध्यान रखने से तुम्हारे सब काम भी मंगल मय होंगे:-

शीलवती-बहिन ! जब कोई व्यथा हो या चित्त अशान्त हो अथवा चिन्ताएं घेरे हों तो ईश्वर में ध्यान कैसे लगे ।

ज्ञानवती-देखो बहिन ! अशान्त चित्त तो ईश्वर के स्मरण मात्र से शान्त हो जावेगा रही चिन्ता या व्यथा सो उनका भी नाश हो जावेगा परन्तु समय आने पर वह भी तुम्हें सबक सिखाने को होती हैं क्योंकि बिना दुख के सुख का मूल्य समझ में नहीं आता । इसलिये दुख सुख सबमें संतुष्ट रहना चाहिये । कहा भी है 'संतोषी सदा सुखी' इस लिये सदैव दुख में सुख में ईश्वरेच्छा समझ कर प्रसन्न रहे कुसंगति से बचती रहें खराब स्त्रियों या पुरुषों के पास न बैठे क्यों कि जिस प्रकार पुरुषों के लिये स्त्री विक्षेप कारण हैं उसी प्रकार स्त्रियों के लिये पुरुष भी विक्षेप का कारण हैं परन्तु यह तभी तक जब तक यथार्थ ज्ञान नहीं । ज्ञान के बाद कोई हानि नहीं । जैसे कि उत्तम श्रेणी की स्त्रियों के लिये संसार में अपने पति के सिवाय सब स्त्रियां ही हैं । पुरुष कोई नहीं, यद्यपि यह उत्तम श्रेणी जरा कठिन अवश्य है परन्तु प्रयत्न से कुछ असम्भव नहीं है । इस लिये स्त्रियों को सदैव एक मात्र अपने पति के चरणों

से भक्ति करनी चाहिये निष्कपट प्रेम से उस के ही चरणों की पूजा करनी चाहिये पति की इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करे जिसमें अप्रसन्नता का भय हो।

शीलवती – बहिन ज़रा यह तो बताओ कि स्त्रियों की के श्रेणी हैं और क्या२ हैं ?

ज्ञानवती –सुनो अनुसुइया जी ने रामायण में श्री जानकी को क्या ही सुन्दर शिक्षा दी है

उत्तम, मध्यम, नीच लघु, सकल कहउँ समझाय।
आगे सुनिहीं सो भव तरहीं, सुनहु सीय चित लाय॥

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनें हु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखहि कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म विचार समझ कुल रहई।
सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई॥
बिन अवसर भय ते रह जोई।
जाने हु अधम नारि जग सोई॥
पतिवंचक पर पति रति करई॥
रौरव नर्क कल्प शत परई।
छिन सुख लागि जन्म शत कोटी॥
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई॥
पति ब्रत धर्म छांड़ि छल गहई।
पति प्रतिकूल जन्मि जंह जाई॥
विधवा होई पाय तरुणाई।

सहज अपावन नारि पति सेवत शुभ गति लहई।
यश गावत श्रुति चार अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिया॥

अच्छा अब श्रेणी के भेद को तो समझ गई कि चार तरह की होती है। पति सेवा से स्त्री सहजमें भव सागर से पार हो जाती हैं स्त्री के लिये संसार में जप, तप, व्रत, धर्म एक यही है कि निष्कपट होकर ईश्वर रूप पति के चरणों की पूजा करे सदैव पति की अनुगामिनी रहे विपत्ति में सहायक बन कर रहे भार रूप न हो जावे जिसे पति आदर की दृष्टि से देखे उसे ईश्वर समान समझे अपने विचारों को बिल्कुल पतिके ही अनुकूल बनाले जो सन्देह हो उन्हें पति के उपदेशों मेंमिटाने का प्रयत्न करे अपने आत्मा को पति में लीन करदे पति सेवा से स्त्री बिना परिश्रम के परम गति को प्राप्त होती है और संसार में भी सच्चा सुख पाती है क्यों कि यदि वह पति प्रेम से वंचित है तो संसार के समस्त सुख होते हुए भी संसार नर्क तुल्य है और यदि स्वामी की प्रेम रूपी अपार सम्पत्ति उसके पास हो तो संसारिक सुख न होने पर संसार स्वर्ग तुल्य सुन्दर दिखाई देगा इस लिये स्त्री को सदैव स्वधर्म पर दृढ़ रहना चाहिये। धर्म में ईश्वर सदैव सहायक रहता है यदि पति कोई अनुचित काम करे तो अनुनय विनय चतुरता से रोके बिल्कुल विपरीत न हो जावे वरन अप्रसन्नता का भय है और अप्रसन्नता के बाद कपट भी होने लगेगा जिससे प्रेम बन्धन ढीला हो जावेगा और बाधा रूप स्त्री को पति रास्ते से हटानेका प्रयत्न करेगा जिससे जीवन दुखमय हो जावेगा। इसलिये सदैव निष्कपटता सहित प्रेम रहना चाहिये, क्योंकि, यह निष्कपटता ऐसा गुण है कि इससे संसार वशमें होजाता है फिर पति को वश करना क्या कठिन है फिर उसके समान भाग्यवती संसार में कौन है।

यदि पति का चित्त स्वार्थ से हट कर परमार्थ की ओर जावे तो कदापि न रोके चाहे स्वयं उसे कष्ट उठाना पड़े परन्तु अपने स्वार्थ के लिये उसे संसार

में फंसाना ठीक नहीं, उसे उन्नति की ओर अग्रसर होने में सहायता दे, जिस से वह स्वयं ज्ञानी होकर तुम्हें भी अवनति के गढ़े से निकालने का प्रयत्न करेगा और तुम्हारा भी परलोक सुधर जायगा। पति को ईश्वर के भरोसे पर छोड़ दे यह भी एक तरह का त्याग है। देखो श्री चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया ऐसा ही आदर्श त्याग कर के तुम्हारे सामने उदाहरण छोड़गई हैं। उन के यह शब्द स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं। 'मेरे स्वामी केवल मेरे ही नहीं वरन जगत के स्वामी हैं इसलिये वे जगत का उद्धार करने के लिये जो कुछ कर रहे हैं उसी में मुझे प्रसन्नता है मेरे त्याग से उनके जगत उद्धार के कार्यमें लाभ पहुंचता है यही मेरे लिये बड़ा लाभ है। मेरा हृदय तो उन्हें अर्पित है उनके सुखमें ही मुझे परमसुख है। जीवों की बड़ी ही बुरी दशा है, उनके उद्धार के लिये प्रभुने मेरा त्याग किया है। पतितों को पावन करने वाले प्रभु की इस विशाल भावना में क्या मुझे कभी आपत्ति करनी चाहिये नहीं कभी नहीं।'

बहिन! कहां तो विष्णुप्रिया जी का यह त्याग कहां वर्तमान स्त्रियों का पति को परमार्थ से रोक संसार में फंसाना परन्तु यह त्याग है कठिन, इसलिये यदि यह न होसके तो इतना अवश्य चाहिये कि उसको बाधा न देकर स्वयं भी उसकी इच्छानुकूल साथ देवे तभी इसका संसार से उद्धार होसकता है क्योंकि ऐसा संयोग भी भाग्य से ही मिलता है, जबकि ईश्वर की कृपादृष्टि होती है बिना उसकी कृपा दृष्टि के सद् बुद्धि भी नहीं आती इसलिये आओ हम तुम मिल कर ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह शीघ्र हम नारियों की कुबुद्धि हरकर सद्बुद्धि प्रदान करें। जय श्री जगत्पिता परमात्मा की जय।

गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान

गतांक से आगे

[ले० स्वामी आत्मानन्द जी]

त्याग

आन्तरिक भाव रहित बाह्य वैराग्य वास्तविक वैराग्य नहीं है, मात्र ढोंग है! ऐसे ढोंग से सदैव अलग रहना चाहिये। लोग त्याग का नाम सुन कर डर जाते हैं और काग का बाघ बना देते हैं। त्याग का नाम सुनते ही शरीर कांपने लगता है और कहते हैं "गृहस्थ आदमी से क्या त्याग हो सकता है? महान पुरुष बिना त्याग कौन कर सकता है? अनेक जन्म की संसिद्धि से त्याग की प्राप्ति होती है" ऐसे अनेक प्रकार के प्रलाप करके लोग त्याग से सैंकड़ों कोस दूर भागते हैं। शोक है! कि ये लोग त्याग का यथार्थ स्वरूप नहीं जानते। उनकी समझ में त्याग बाहर होता है इसलिये भटकते हुये, फटे पुराने और मैले वस्त्र पहिने हुये, भभूत रमाये हुये साधुओं को त्यागी कहते हैं। ऐसों से कहना चाहिये

कि कोल्हू के बैल के समान आंख पर चढ़ी हुई चमड़े की अंधेरी ढकना को हटाओ, विचार से देखो! त्याग बाहर से नहीं होता भीतर से होता है आंतरिक त्याग बिना बाह्य त्याग मात्र नाटक का खेल है। देखो! तुम्हारे सब काम त्याग से होते हैं तो तुम्हें त्याग का स्वरूप मालूम नहीं है। चाहे तुम व्यापार करो, चाहे खेती करो, चाहे नौकरी करो, अथवा व्यवहार करो। प्रथम क्या होता है? 'त्याग' पीछे फल होता है।

व्यापार करने में प्रथम रुपया घर में से निकालना पड़ता है, कंकर, मिट्टी, पत्थर, धातु और अनाजादि में लगाना पड़ता है। यह क्या है? त्याग ही है पीछे लोभ सहित रुपया समेटा जाता है। खेती करने वाले का भी प्रत्यक्ष यही हाल है। प्रथम बीज मिट्टी में मिला दिया जाता है यह त्याग ही है। खेती पकने पर एक २ अनेक २ हो जाते हैं नौकरी में क्या होता है? प्रथम शरीर और मन, महनत कर मिट्टी में मलाओ, पसीना रूपी जल में महीने भर तक स्नान करो। यहां त्याग है तब वेतन प्राप्त होता है। इसी प्रकार व्यवहारिक त्याग बिना जाने भी हर एक से होता ही रहता है जैसे कुंजड़े के यहां साग लेने आओ तो प्रथम पैसे का त्याग की जये तब साग प्राप्त होता है और इसी तरह कुंजड़ा साग का त्याग करे तब पैसा प्राप्त होता है यदि दोनों में से प्रथम कोई भी त्याग न करे तो व्यवहार चलना असम्भव है। इस लिये त्याग स्वाभाविक है उसी त्याग की विशेष मात्रा संसारिक प्रपंच का हमेशा के लिये त्याग करना इस का नाम वैराग्य है।

इस प्रकार के वैराग्य से ही ज्ञान का अधिकारी मुमुक्षु कहलाता है। सतगुरु द्वारा किये उपदेश से करामलकवत् अपरोक्ष ज्ञान होता है, जो संसार के कारण अज्ञान रूप अन्धेरे को प्रचंड सूर्य के समान है।

भाविक:-हे भगवन्! अपरोक्ष ज्ञानका स्वरूप मेरी बुद्धि में आरूढ़ होने के लिये सविस्तार से वर्णन कीजिये। हे भगवन् मेरे ऊपर अनुग्रह करके यह भी समझाइये कि वह सबका गुरु और अन्तर्यामी किस प्रकार से है और उसको जान कर किस लाभ की प्राप्ति होती है।

सन्त: आत्मा को इस प्रकार जानना कि मैं ही आत्मा हूं यह अपरोक्ष ज्ञान का स्वरूप है। यही अन्तर्यामी सब गुरुओं का गुरु है। अविनाशी, निर्विकार है।

जो पृथ्वी के अन्तर है, जो पृथ्वी के बाहर है, जो पृथ्वी के ऊपर है, जो पृथ्वी के नीचे है, जिस को पृथ्वी नहीं जानती है, जो पृथ्वी को जानता है, जिसका पृथ्वी शरीर है, जो बाहर भीतर रह कर पृथ्वी को उसके व्यापार में लगाता है और जो अविनाशी है, निर्विकार है, जो हमारा तुम्हारा और सब का आत्मा है, वही हे भाविक! अन्तर्यामी गुरुओं का गुरु है।

जो जलमें रहता है और जल के बाहर भी है, जिसको जल नहीं जानता, जिसका शरीर जल है और जलके बाहर भीतर रह कर उसका शासन करता है वही सबका आत्मा, वही अविनाशी, निर्विकार, वही वह अन्तर्यामी सब का गुरु है।

जो अग्नि के बाहर भीतर स्थित है, जो अग्नि का शरीर है जिसको अग्नि नहीं जानता है, जो अग्नि को जानता है और जो अग्नि के बाहर भीतर रह कर अग्नि का शासन करता है, जो अमृत

रूप सबका आत्मा है वही अविनाशी, निर्विकार, अन्तर्यामी, सब गुरुओं का गुरु है।

जो अन्तरिक्ष में रहता है, जो अन्तरिक्ष के बाहर स्थित है, जिसको अन्तरिक्ष नहीं जानता, जो अन्तरिक्ष को जानता है, जिसका शरीर अन्तरिक्ष है, जो अन्तरिक्ष के बाहर भीतर स्थित होकर अन्तरिक्ष को शासन करता है जो सब का अविनाशी आत्मा है, यही अन्तर्यामी निर्विकार सब गुरुओं का गुरु है

जो वायु के बाहर भीतर रहता है जिसको वायु नहीं जानता, और जो वायु को जानता है। जिस का वायु शरीर है, जो वायु के बाहर भीतर रह कर वायु को शासन करता है, जो सबका अविनाशी, निर्विकार आत्मा है, यही अन्तर्यामी सब गुरुओं का गुरु है।

जो द्युलोक में स्थित है, जो द्युलोक के बाहर है, जिसको द्युलोक (स्वर्गलोक) नहीं जानता, जो द्युलोक को जानता है, जिस का द्युलोक शरीर है, जो द्युलोक के बाहर भीतर स्थित रह कर द्युलोक को शासन करता है, जो अविनाशी सबका आत्मा है यही अन्तर्यामी सब गुरुओं का गुरु है।

इसी प्रकार जो आदित्य, दिशा, चन्द्र,तारा, आकाश, अन्धकार, तेज, सर्व प्राणियों में प्राण, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान, वीर्य आदि सर्व के बाहर भीतर स्थित है, जिसको वीर्य आदि नहीं जानते हैं, जो वीर्यादि को जानता है, जिसका शरीर वीर्यादि हैं। जो वीर्यादि के बाहर भीतर रह कर वीर्यादि को शासन करता है, वही अदृष्ट होता हुवा दृष्ट है, वही अश्रुत होता हुआ श्रोता है, वही अमन्ता होता हुआ मनन करने वाला है और अविज्ञाता होता हुआ विज्ञाता है, वही समस्त का आत्मा है, वही अदृष्ट स्वरूप है, इस से पृथक् और कोई द्रष्टा नहीं है, इससे पृथक् और दूसरा कोई श्रोता नहीं है, इस से अन्य कोई मन्ता नहीं है, इस से अन्य कोई विज्ञाता नहीं है, यही सब का अविनाशी आत्मा अन्तर्यामी है, इससे पृथक् और सब दुःख रूप है। हे भाविक! इसको जान कर परम लाभरूपी महान फल जो परम पद, अव्ययपद, आत्मपद, जो गुरु शब्द का लक्ष्यार्थ है उसको प्राप्त होता है और इस दुःखागार रूपी संसार में फिर लौट कर नहीं आता।

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

श्री० भ. गी. ८.१६

भाविकः-हे भगवन्! तुलसीदास जी का कथन सत्य है और वे लोग महामूर्ख हैं जो कहते हैं कि गुरु करने की क्या आवश्यकता है? आप की असीम कृपाका आभारी हूं, आपके वचनों ने अज्ञान नष्ट करके पराकाष्ठा रूप आत्म ज्ञान को प्राप्त कर दिया अब मेरा मोह नष्ट होगया असम्भावना विपरीत भावना से रहित होकर अपने स्वरूप में स्थित हूं पूर्व की स्मृति आगई कि मैं ही आनन्द स्वरूप आत्मा हूं मैं आप के प्रसाद करके कृत्य २ हुवा हूं इसलिए आप ही मेरे सब कुछ हैं। सत्य कहा है

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं।

आप की आज्ञा ही पालन करना मेरा कर्तव्य है।

सन्तः-आनन्द पूर्वक जीवन मुक्त हो कर विचर अब तू स्वयं गुरु होगया समझ गया, जो शिष्य गुरु के पास जाता है वह गुरु रूप ही बनने जाता है न कि चेला। यही शिष्य का शिष्यपन और यही गुरु का गुरुपन है यही परम गुह्य रहस्य है।

देखिये ! भावुक थोड़े ही काल गुरु का सेवन करने से परम पदको प्राप्त हुआ। जो कोई श्रीगुरुपद पंकज सेवा दीर्घ काल निरन्तर आदर पूर्वक सेवन कर रहे हैं और करेंगे उनका कहना ही क्या है ? यानी निस्संदेह अमर पद को प्राप्त होंगे

इसलिये सर्व श्रेयोत्सुक मुमुक्षुओं को उचित है कि समस्त ओर से भावों को हटा कर श्रीगुरु पद पंकज सेवा में लगाना चाहिये।

प्रिय पाठको ! इस वाक्य को हृदय में धारण करोगे तो परम सुख रूप आत्माराम को पाओगे. यदि प्रमाद करोगे तो वर्षों फिर मरो फिर जन्मो फिर मरो इस महान दुःख रूपी चक्कर से छुटकारा नहीं पाओगे। हे प्रेमियो ! हे भावुको ! जन्म मरण रूपी इस फांसी को गुरु पद पंकज सेवन कर छुड़ाइये और परम पद के भागी बनिये।

कुंडलिया

सद्गुरु अति परमारथी, जन्म जन्म के क्लेश।
काटत हैं पल एक में, देकर सत उपदेश॥
देकर सत उपदेश, जगत ज्यों सूर्य प्रकाशत।
सज्जन वचन प्रवेश, तिमिरि ज्यों अन्तर नाशत॥
भवभय मिटकर पाव, आत्मानन्द हरीपुरु।
निर्भय जीवन मुक्त, एक क्षण देते सद्गुरु॥१॥

पावत सद्गुरु के तुरत, नाशत त्रीगुण प्रेत।
नाम रूप की देह को, मात पिता जग देत॥
मात पिता जग देत, जन्म जग भार उठावन।
गुरु ज्ञान शुभ देत, सकल जग दुःख नशावन॥
होय स्वरूप प्रबोध, अहंता ममता भागत।
होकर अचल अकाम, आत्म प्रभु को है पावत॥२॥

दोहा

दुनियाँ के करतव्य में, होवो सदा निष्काम।
ढूंढो सतगुरु को सभी, पावो पद आराम॥

गुरु अवाच्य है

कौन सुनै कासे कहूँ, मित्रो यह सपने की बात।
गूंगा को सपनो भयो, मुख से कहो न जात॥
जो सांचा सतगुरु रंग राँचा समुझे बात हमारी।
विषयी भी तो जानि सकै नहिं क्या जाने संसारी॥

विषयी-सकामी वेदोक्त कर्म करने वाले।

संसारी-पाँवर यानी लोकायत नास्तिक नीच क्या जान सकेंगे।

चेतावनी

[ले० श्री० पं० हनुमानप्रसाद "सैनिक"]

है नरको तन पाइवो दुर्लभ सोतन पाइके पातक जोरैं।
मानत है विषयासुख में रति धर्मकि बात सुने मुख मोरैं॥
ऐसि कुटेव परी सठ सैनिक, चाहत है घृत वारि बिलोरैं।
चेत रे चेत अजौं चित चेत सु तीर लगी नवका उसवोरैं॥

चाहत है धन जोरिबो सब पै त्याग जवाहिर काँच बटोरैं।
कंचन छोड़िके लोह धरै सठ, त्याग सुधारस माहुर घोरैं॥
'सैनिक' कौन कुटेव परी अरे कागको पालत हंसहि छोरैं।
ऐसेहि तू नरको तन पाइके छोड़ सुमारग पातक जोरैं॥

तू धन जोर भंडार भरै पुनि आप न खाय न और खवावै।
भाई कुटुंब, सबै परिवार को आपन जानिके मोह बढावै
'सैनिक' गाढ परै जब ऊपर हाय तबै कोउ काम न आवै
चेतरे चेत सचेत हो मूरख अन्तके काल अकेलेहि जावै॥

गीता में श्री भगवान् की अभय वाणी

[ले० आचार्य मदनमोहन जी गोस्वामी भक्ति तीर्थ भागवत रत्न वृन्दावन]

श्री भगवान् गीता में कहते हैं कि, "तेषामहंसमुद्धर्ता" आहा ! परम करुणामय दीनदयाल जगत् नियन्ता प्रभु की कैसी मधुर तथा अभय-वाणी है श्रीश्याम सुन्दर भगवान् माया से मलीन चित्त वाले जीवों को चैतन्य कराकर उच्चैः स्वर से घोषण करते हैं कि, इस दुस्तर संसार सागर से जीवों का उद्धार करने वाला मैं ही हूं।

जो संसार के शोकतापों के तीव्र तुषानल में जर्जरित होकर संसार की - कुटिलता निष्ठुरता स्त्री पुत्रादि आत्मीय जनोंकी अकृतज्ञता का परिचय पाकर संसार की असारता को भली भांति अनुभव कर चुके हैं जो लोग समझगये हैं कि, "नजातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति" विषय-भोगों को भोगकरभी भोगेच्छा को दूर नहीं करसकते जिनको मालूम होगया है कि अपना शब्द वाच्य इस जगत् में कोई नहीं है यदि है तो केवल भगवान ही हैं। ऐसे पुरुषों को भगवान् शीघ्र अनपायिनी" भक्ति के मार्ग में खींचकर अपना अभय स्थान देते हैं। इसमें श्री भगवद्वचन-ही प्रमाण है यथा-

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते

इसका तात्पर्य यह है कि जोलोग मेरे नाम गुण माहात्म्य के समुद्र में अपने मन को गोता लगवाकर उपासना करते हैं वे योगी गणों के मध्य में श्रेष्ठ माने जाते हैं। वे लोग ही मुझे शीघ्र प्राप्त होते हैं। श्री भगवान् ने और भी कहा है-कि जो निर्भेद ब्रह्म वादी हैं वेभी मेरी उपासना करते हैं किंतु व्यक्त रूप से मुझे प्राप्त नहीं होते इसीसे यह उपासना जीव के लिए कष्ट साध्य है। उस-अक्षर अणुचैतन्य की उपासना प्रणालीका दिग्दर्शन करा देना उचित है।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्व भूत हिते रताः॥

उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि श्रोत्रादि इन्द्रिय सबों को नियमबद्ध करके सबके प्रति सम दृष्टि अवलम्बन कर जो व्यवहार करते हैं उनको समदर्शी कहते हैं। चेतनाचेतन सभी स्थानों पर ब्रह्म की अवस्थिति है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सबप्राणियों में प्रतिबिम्बित व्यष्टि ब्रह्म में जब बुद्धिका निवेश होता है तब वह समदर्शी होता है। उक्त अवस्था में स्थिति हो जाने पर द्वेष का भाव नहीं रहता वह ब्रह्म की विभूति सबको मानता है। सुतरां सब प्राणियों के मंगल जनक कार्यों में सबों का कल्याण हो; यह कहकर यत्नवान् होता है श्री भगवान् यह भी कहते हैं कि जो आत्म साक्षात्कार के लिए मेरे प्रति समस्त कार्यों को अर्पण करता हुआ उपासना में प्रवृत्त होता है उसको अनेक कष्टों के उपरान्त मेरे परमैश्वर्यमय प्रधान रूप की स्थिति की प्राप्ति होती है, तब वह धन्य होता है। यह तो ठीक है कि परम वस्तु की प्राप्ति के लिए यत्न करने पर कदापि निष्फलता नहीं होती परन्तु उपाय भेद से फलाफल के तारतम्य में अन्तर अवश्य स्वीकार करना पड़ता है।

विचारणीय यह है कि, "भक्त" और 'ज्ञानी' दोनों ही भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं तब ज्ञानी से 'भक्त' की श्रेष्ठता क्यों घोषणा की जाती है ? और किस अंश में उस निर्विशेष ब्रह्मोपासक ज्ञानी का अपकर्ष सूचित किया है इसका उत्तर यह है कि:-

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५

अव्यक्तासक्त चेतसां (निर्गुणब्रह्मणि समाहित चित्तानां) तेषां साधकानां क्लेशः अधिकतरः (अतिशयेन अधिकः) हि यस्मात् देहवद्भिः (देहाभिमानिभिः) अव्यक्ता (निर्गुण ब्रह्मविषया) गतिः (निष्ठा) दुखं (यथास्यात्तथा) अवाप्यते (प्राप्यते) इत्यर्थः ।

तात्पर्यार्थ यह है कि जो अव्यक्त अर्थात् निर्गुण ब्रह्म में समाधि लगाकर मनोनिवेश करते हैं उन लोगों को अधिकतर क्लेश भोगना पड़ता है। यह भी ठीक है कि भक्तों को भी भक्ति आचरण के समय यदि कोई दूसरे व्यापार का समावेश आजाता है तो उनको भी क्लेशकी संभावना का आभास होता है परंतु विचित्रता यह है कि नव घनश्यामकी आनन्द मयी मूर्तिकी स्फूर्ति का चित्त में आविर्भाव होने से क्लेश हृदय को स्पर्श नहीं करता क्यों कि व्यक्त का दर्शन होता है ।

अव्यक्त की उपासना में व्यक्तहोना एक कठिन समस्या है क्यों कि अव्यक्त को व्यक्त रूपसे नहीं देख सकते । सुतरां जीव को उस गति में क्लेश अधिक है । इसीसे भक्त और ज्ञानी में जो प्रभेद है वह सिद्ध हो जाता है ।

श्री भगवान् कहते हैं कि भक्त सिद्धावस्था में निर्भय रूपसे मुझे प्राप्त होता है । ज्ञानी सिद्धिलाभ के पूर्व मेरे नित्य आनंद प्रेममय स्वरूप को उपलब्ध न करता हुआ चरमगति के सुख को अनुभव नहीं कर सकता । अतः सिद्धान्त तत्व से स्थिर होता है कि, निर्गुण ब्रह्म के उपासक को भावमयी भक्ति से वंचित होने के कारण केवल क्लेश मात्र प्राप्त होता है । ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग तो अत्यंत दूर है ।

जीवका स्वरूप नित्य चिन्मय नित्य आनंदमय है । अव्यक्त अवस्था में लीन होने से उसकी उपादेयता उपलब्धि नहीं होती ।

अव्यक्त की उपासना से अपने अपने रूपका जो विपरीत स्वरूप है अर्थात् 'अहं ग्रह' बुद्धि उपस्थित होती है उसे छोड़ने पर भी कष्ट मालुम पड़ता है । वह कष्ट देहाभिमानी पुरुषों की तरह होता है । देहाभिमानी पुरुष स्थूल शरीर को आत्मा मानता है ऐसी दशामें निर्गुण ब्रह्म अणुचैतन्य जो सूक्ष्म विचार के भी अगोचर है उसका अनुशीलन करने में कैसे समर्थ होसकता है । विशेषतः निर्विशेष वादियों को इन्द्रिय निरोध करना भी प्रधान कर्तव्य है । किंतु यह भी कठिन समस्या है क्योंकि जैसे बहुतसी नदियों का प्रवाह एक साथ रोकना कठिन है इसीतरह इन्द्रियोंका निरोध भी समझना चाहिये । इस में श्री सनत्कुमार ऋषि गणोंकी उक्ति प्रमाण है । यथा:-

यत्पाद पङ्कज पलाश विलास भक्त्या ।
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ॥
तद्वन्नरिक्त मतयो यतयो निरुद्ध ।
श्रोतो गणास्त मरणं भज वासुदेवम् ॥

उक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि श्री भगवान् के अमल चरण कमलों की भक्ति से साधुओं का हृदय कर्माशय बंधनों से ग्रथित होने पर भी अनायास में मुक्त होजाता है । परंतु निर्विशेष ब्रह्मवादी गण प्रबल इन्द्रियों के वेगको रोककरभी कर्माशय बंधनों

से मुक्त नहीं होते। सुतरां सगुण (साकार) उपासनामें सुखप्राप्ति है। क्यों कि यह उपासना प्रमाद शून्य है। निर्गुण उपासना कठिन है अतएव कष्टकर है और सप्रमाद है। इसीसे श्रीभागवत् में भी लिखा है 'तेषा मसौ क्लेशलमेव शिष्यते, नान्यद्यथा स्थूल तुषा व घातिनाम्'। भक्तोंको सायुज्यादि मुक्ति प्राप्तहोनेपर भी वह उसका आदर नहीं करते "दीयमानं न गृह्णन्ति" इत्यादि वाक्य से स्पष्ट है। उक्त बातों की आलोचना से निश्चय होता है कि ज्ञानी और भक्त में यथा क्रम से अपकर्ष और उत्कर्ष पायाजाता है। क्यों कि भक्ति चित्स्वरूपिणी है भक्ति की सहायता के अतिरिक्त केवल ज्ञान कदापि गतिप्रद नहीं है। सुतरां जो लोग केवल ज्ञान के चक्कर में रहते हैं उनको दुःख ही मिलता है।

वेदान्तसूत्रमें भी एक सूत्र लिखा है 'गतिसामा न्यात्' इस सूत्रमें ब्रह्म का सगुण और निर्गुण द्वैरूप्य भेद निरस्त हुआ है सब वेदों मे ब्रह्म को अद्वितीय कहकर प्रतिपन्न किया है। सुतरां ब्रह्मका निर्गुण भेद कल्पना मात्र है। अतएव कल्पित निर्गुण ब्रह्मकी उपासना में परिश्रम करना प्रशंसनीय कैसे होसकता है।

भक्ति की साधना में भक्तों को निश्चय है कि 'मत्तःपरतरंनान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय' अक्षर ब्रह्म केवल श्रुतिवाक्य से जाने जाते हैं ब्रह्म को वेद वेद्यत्व लिखा है और उसी वेदमें लिखा है कि "यतोवाचोनि-वर्तन्ते इत्यादि वाक्यों मे ब्रह्मको सर्वतोभावसे अगोचर लिखा है। अतएव प्रवृत्ति निमित्ताभाव में निर्गुण का अप्रामाण्य और न्यूनताही लक्षित होती है। सर्वशब्द वाच्यत्व स्वीकृत नहीं होता। सर्वदा एकावस्थ वस्तु को कूटस्थ कहकर उसमें अध्यासका आरोप किया जाता है। इत्यादि कारणों से निर्गुण ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा भक्तिमार्ग का मधुरभाव चित्त को प्रेम निधिमें डुबाता है। इसीसे श्रीभगवान् कहते हैं

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्परा
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते

जो समस्त कर्मों को मुझमें अर्पित करके भक्ति के द्वारा मेरी उपासना करते हैं उनको क्या प्राप्त होता है। 'यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत्' कर्म योग, तपयोग, ज्ञानयोग वैराग्यादिकों से जो बड़ी कठिनता से प्राप्तहोता है वह 'सर्वं मद्भक्ति योगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा" श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरा भक्त भक्ति योग से सब शीघ्र प्राप्त कर लेता है इसी से तो भगवान् गीता में अभय वाणी को वर्णन करते हैं

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्

कृतकृत्यता

[ले० स्वामी आत्मानन्द जी]

प्रिय पाठको! मेरे परम प्यारे भगवत् भक्तो! आओ आज उस ईश्वर के गुणानुवाद में समय लगावें, जिसने अहेतु दया करके हमको आंखें दी हैं, जिसको बदले में हमारे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसको देकर उऋण हो सकें क्योंकि यदि हम त्रिलोकि की समृद्धि को प्राप्त हैं और हम किसी डाक्टर से अपनी आंख फूट जाने पर कहें कि अपनी समस्त समृद्धि को आप [को देते हैं, हमारी आंख जैसी की वैसी कर दीजिये। परन्तु ऐसा करने को कोई समर्थ नहीं है। अब विचारो कि उस जगत्पिता ने हमको बिना कुछ किये ही प्रदान की हैं क्या उस

को दान देने के लिये कुछ नहीं है तो उसके गुणगान करने और बारम्बार धन्यवाद देने से क्यों चूकें ? इसी प्रकार उस दयालु ने हमको जीवन, भोग, भोगों का आयतन शरीर और शरीर में इन्द्रियां आदि दी हैं, जो अमूल्य यानी बेशकीमत हैं, जिन का मूल्य करना मन बुद्धि से बाहर है। परन्तु हां इतना हम लोग कर सकते हैं कि दिन रात उस परम दयालु का निरन्तर चिन्तन करते हुये सत्कार पूर्वक मन कर्म बचन की चतुराई छोड़ कर बारम्बार उसके गुणोंका गान करें। इसके अतिरिक्त हमारे पास और कोई साधन ही नहीं है, ऐसा करने ही से हम कृतकृत्य हो सकते हैं।

यदि हम ऐसे नहीं करें तो हम कृतकृत्य कैसे होसकते हैं ? हम भगवत् भक्ति से यदि विहीन हैं तो पशुओं से नीच ही समझना चाहिये, क्योंकि पशु अपने पालन पोषण करने वाले को अपनी शक्ति अनुसार सेवा से प्रसन्न रखते हैं, जैसे गाय दूधदेकर घोड़ा सवारी देकर, गधा बोझा ढोकर, मोर नाच कर, इत्यादि सभी पशु पक्षी अपने उपकार करने वाले की सेवा अपनी योग्यतानुसार करते हैं और हम अपने उपकार करने वाले की सेवा नहीं करें तो पशु पक्षियों की सभा में भी कान पकड़ कर नीच आन निकाल दिये जावें तो क्या बुरा है ? अर्थात् योग्य ही है।

यदि संसारासक्ति त्यागने को हम समर्थ नहीं हैं तो पशुओं से नीच ही हैं। जैसे देखिये गाय आदि अपने बच्चे को निरहेतु दूध पिलाती और रक्षा करती है। जब बच्चा दूध छोड़ देता है तब फिर उस से वह मोह छोड़ देती है। परन्तु हम लोग अपने पुत्र पौत्र कलत्रादि और उनके सम्बन्धियों तक के लिये मोह को प्राप्त होकर दुःखी होते हैं। इसलिये हम पशुओं की सभा में मूंछ मरोड़ कर अर्थात् सिर ऊंचा कर बैठने योग्य नहीं हैं।

हां यदि हम सच्ची अनपायिनी भगवद्भक्ति में लग जावें तो पशुओं की तो क्या देवताओं से भी बढ़कर हैं। भगवद्भक्ति से ही हम कृतकृत्य हो सकते हैं अन्यथा नहीं। इसलिये मनुष्य मात्र को चाहिये कि सच्ची अनपायिनी भक्ति में लग कर अपने को कृतकृत्य करें।

मेरा मुझको कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपना क्या लागे है मोर॥
लायक होऊं तो मैं तेरा नालायक भी तेरा हूं।
तुझसा मुझ में एकहु गुण नहीं सब औगुण का डेरा हूं॥
राम स्वरूप रूप हियधारहुं गुण अनूप तेरे गाता हूं।
माता मेरा राम भजन से हरिभक्तों को शीश नवाता हूं॥

शरणागत

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी]

सब का छोड़ आसरा नाथ शरण में आन पड़ा तेरी।
मैं हूं दुखिया दीन अजान, तुम गुण आगर ज्ञान निधान
अब तो हरिये श्री भगवान् उनके पाप पुंज की ढेरी॥१
प्रबल रिपु काम क्रोध भारी, इन्होंने हरी सुमति सारी।
तुम्हीं हो आरत दुःख हारी, निभाओ अबकी बेर मेरी॥२
मैं हूं सब साधन ते हीन, हौं नहिं विद्या बुद्धि प्रवीन।
स्वामी सब विधि तव आधीन, फकत इक आस रही तेरी
तुम तो हो प्रभु सर्वाधार मैं हूं सब ही भांति निराधार।
भगवन् डूब रहा मझधार तमक रही उर में घोर अन्धेरी

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी

[ले० श्री० बालमुकुन्द जी शर्मा]

इस अखिल भूमंडल पर जब धर्म का ह्रास एवं अधर्म का साम्राज्य बढ़ने लगता है और समस्त संसार स्थित जीवगण सनातन वैदिक सिद्धान्तों को त्याग कर मायादि मिथ्या पाखण्ड वाद में फंसकर गौ, ब्राह्मण, साधु महात्माओं को नाना प्रकार के दुख देने लगते हैं, तब परम कारुणिक भगवान पुरुषोत्तम पुनः धर्म स्थापन, अवैदिक, अनीश्वर, मायादि वादों के हटाने तथा साधु ब्राह्मणादिकों की रक्षा के हेतु इस भूमण्डल पर 'आचार्य' रूप में अवतरित होते हैं जैसीकि 'श्रीमद्भगवद्गीता' में आपने प्रतिज्ञा की है:-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ॥४ ७॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ॥४ ८॥

इसी प्रतिज्ञानुसार भगवान् ने व्यास नारायण शुक्राचार्य, नारद, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, पृथुतिस्वरूप से इस भारत भूमि पर यथोचित समय में जन्म ले ले कर सांसारिक जीवोंको स्वरूप, ज्ञान उपदेश सामर्थ्य द्वारा कृतकृत्य किया और वैदिक सनातन अखण्ड धर्म की पुनः संस्थापना की।

आज मैं विश्व विभूति स्वरूप गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र अपने प्रेमी पाठकों की भेंट करता हूं। आशा है कि पाठकगण श्रीभट्टाचार्य चरण के आदर्श जीवन चरित्र से अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगे।

आप का जन्म सम्वत् १५७२ पौष कृष्णा ९ को काशीपुरी के समीपस्थ 'चरणाद्रि' चुनार नामक ग्राम में हुआ था आप के पितामह का नाम 'श्री-लक्ष्मण भट्ट' और पिताका नाम श्रीवल्लभाचार्य था। आप विशुद्ध वेल्लनाडु श्रोत्रिय ब्राह्मणान्तर्गत तैलंग ब्राह्मण थे। बाल्यावस्था से ही आप महापुरुषत्वादि शुभ लक्षणों से सुसम्पन्न थे। आप परम भक्त, मेधावी तथा अलौकिक प्रतिभायुक्त थे।

यथोचित समय प्राप्त होने पर आप के पिता ने आप का वेदोक्त रीति के अनुसार श्रोत्रिय ब्राह्मणों द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार कराया तदनन्तर विद्याध्ययन के लिये आप को काशी निवासी श्री मधुसूदन सरस्वती जी के समीप भेजा। आप वहां बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति से गुरु सेवा करते और नियम पूर्वक अध्ययन करते थे। इसी प्रकार आप ने १५ वर्ष की अवस्था में ही सरहस्य वेद वेदांगादि का भली भांति अध्ययन समाप्त किया।

इधर आप के इसी अध्ययन कालमें ही आप के श्रीपितृ पाद श्री वल्लभाचार्य जी अपने अवसान कार्य को सम्पूर्ण जान कर महायात्रा के हेतु श्री काशीपुरी

में एकान्त वास करने लगे थे। जब आप को अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीगोपीनाथ द्वारा यह समाचार विदित हुआ तब आप श्रीगोपीनाथ के साथ श्रीपितृचरण के दर्शन के हेतु उसी स्थान पर पधारे जहां श्रीमहाप्रभु जी श्री कृष्णचन्द्र का अहर्निश ध्यान करते हुये अपने शेष समय को व्यतीत कर रहे थे। वहां पहुंच श्रीपितृचरण के दर्शन कर आपने बारम्बार प्रणाम किया और कुछ उपदेश ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की। किन्तु उस समय श्री बल्लभाचार्य जी मौन व्रत धारण कर चुके थे अतएव कुछ नहीं बोले किन्तु आप की उपदेश ग्रहण करने की उत्कट अभिलाषा देख कर साढ़े तीन श्लोक एक पत्र पर लिख कर आप को दिये। जिसे पढ़ कर आप को अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ।

कहते हैं कि उसी अवसर पर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र आनन्द कन्द जी प्रकट हुये और श्री विट्ठलनाथ जी को यह उपदेश दिया था कि:-

यद्यपि चेदस्ति विश्वासः श्रीगोपीजनवल्लभे।
तदा कृतार्था यूयं हि शोचनीयं न कर्हिचित्॥

अर्थात् श्रीगोपीजनवल्लभ परम प्रिय सुख में यदि तुम लोगों का अटल अनुराग रहेगा तो तुम निश्चय ही कृत कृत्य हो जाओगे। तुम्हारी शोचनीय दशा कभी न होगी।

इस प्रकार उपदेश ग्रहण करने पर कुछही मास व्यतीत हुये थे कि आप को पितृ वियोग सहना पड़ा जिसने आपको बहुतही दुःख हुआ, थोड़ा समय व्यतीत होनेपर आप काशीसे चलकर अडेल नामक ग्राममें निवासकरने लगे तथा जिस प्रकार श्रीनाथजी की सेवा श्रीमहाप्रभु जी अनन्य भाव से किया करते थे उसी प्रकार आप भी तन, मन, धन एवं बड़ी श्रद्धा व भक्ति भाव से श्री जी की अहर्निश सेवा करने लगे और इन के साथ ही साथ देश देशान्तर के अन्यान्य मतावलम्बी जो उत्कट विद्वान् थे, आप से शास्त्रार्थ करने आते थे उन से भी नित्य शास्त्रार्थ कर उन्हें वेद वेदान्त का यथार्थ रहस्य समझाया करते थे। इस प्रकार जब आप के अलौकिक पाण्डित्य की प्रशंसा द्वीप द्वीपान्तरों में पहुंची तब शतशः विद्वान, महात्मा साधु संन्यासी एवं देशान्तर वासी आप के पास नित्य प्रति आते थे तथा आप की अपूर्व वक्तृता शक्ति, वेद सिद्धि, अद्भुत अकाट्ययुक्ति अलौकिक तर्क प्रणाली देखकर परम चकित तथा आनन्दित होजाते थे और आप के शिष्य हो होकर अपने २ स्थानों को चले जाते थे।

इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग के गूढ़ रहस्यों को सर्व साधारण के समक्ष रख कर सांसारिक जीवों का बड़ा भारी उपकार किया। आप ने अपनी २०-२५ की अवस्था में पृथ्वी की प्रदक्षिणाकर वाल्लभ भक्ति मार्ग की सार्व भौमिकता सिद्ध कर उसे विश्व व्यापी बनाया। आप का हिन्दुओं को सुसंगठित कर उन में राष्ट्रीय मत भेदका सम्यक्तया खण्डन करना और समस्त एवं धार्मिक भाव उत्पन्न करना भारत वर्ष के मध्य इतिहास में एक अभूत पूर्व घटना है जोकि स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। कदाचित् ही भारत वर्ष में अन्य किसी मत प्रचारक को ऐसी सफलता प्राप्त हुई हो व स्वमत के प्रचार का ऐसा अपूर्व प्रभाव पड़ा हो जैसा कि आप के सरल सर्व जन हितकारी विश्व धर्म के व देशों का प्रभाव भारतीय ही पर क्या अन्यान्य द्वीप द्वीपान्तर वासी अशिक्षित जनता पर पड़ा, जिस का स्पष्टीकरण आप के सद्भाव-युक्त ब्रह्मसम्बन्ध, भक्ति हंस,

भक्ति हेतु निर्णय आदि प्रकाण्ड पाण्डित्य पूर्ण ग्रंथ रत्नों द्वारा होता है इनग्रन्थों में आप ने उस समय में प्रचलित सभी मतान्तरों का वेद सिद्ध युक्तियों से खण्डन कर शुद्ध भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया है इन बातों से स्पष्ट है कि आप में कितनी अगाध बुद्धि वेद वेदान्तर ज्ञान और कैसा अलौकिक प्रतिभा थी। आपने लगभग २७-२८ वर्षकी अवस्था में शुभ अवसर पर श्री रुक्मिणी जी के साथ विवाह संस्कार किया, श्री रुक्मिणीजी एक विदुषी महिला थीं, आपकी भगवत् सेवा अतिथी सेवा में विलक्षण श्रद्धा थी। आप ने व्याकरण वेदान्त धर्म शास्त्र कर्म कांडादि के बड़े २ ग्रन्थों का अध्ययन किया था आप का श्री कृष्णचन्द्र पर अटल अनुराग था, अनुरोध से आपने एक सागरस्थ तैलंग ब्राह्मणकी परम सुशीला कन्या श्री पद्मावतीजी के साथ अपना द्वितीय विवाह किया, श्री पद्मावतीजी भी धर्मात्मा, विदुषी और परम सुशीला थी इस प्रकार आप के दो विवाह हुए थे। कुछ समय व्यतीत होने पर आप के प्रथम पत्नि श्री रुक्मिणी से क्रमशः छः पुत्र और द्वितीय पत्नी श्री दुर्गावती से एक पुत्र, इस प्रकार सात पुत्र रत्न प्राप्त हुये।

आप के उपरोक्त पुत्रों में से केवल श्रीगिरधारी और श्री यदुनाथ जी का ही वंश विस्तार हुवा है। वर्तमान समय में आचार्य पाद जितने गोस्वामी वर्ग इस भूतल को अलंकृत कर रहे हैं वह सब श्री गिरधारी जी व श्री यदुनाथ जी के ही वंशज हैं।

आप ने श्री महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित भक्ति मार्ग को सामान्य एवं सुदृढ बनाये रखने के लिये ५२ ग्रन्थों की रचना की है, जिनके नाम लेखका कलेवर बढ जानेके लिये नहीं दिये जाते।

आप भारत वर्ष में प्रथम श्रेणी के आचार्य थे आपने केवल संस्कृत में ही कविता नहीं की वरन् सर्व साधारण के कल्याणार्थ हिन्दी में भी अलौकिक माधुर्य पूर्ण ललित पदावली युक्त कविता की है

आप ने भारत वर्ष की धार्मिक व सामाजिक दशा का भली भांति सुधार किया और हिन्दू जाति को संगठित कर सामाजिक कुरीतियों का नाश किया इस प्रकार आप का कार्य देखकर व आपके प्रबल प्रभाव से प्रभावित हो कर भारत सम्राट् अकबर जैसे मुसलमान बादशाहों तक ने आपका बड़ी भक्ति पूर्वक तन, मन, धन से अनेकों बार सन्मान किया। राजा टोडरमल तो आपका अनन्य भक्त होगया था श्री विट्ठलनाथ जी के अनेकों चरित्रों से ज्ञात होता है कि आप एक महा पुरुष थे आप निखिल शास्त्रों के अद्वितीय ज्ञाता महा तेजस्वी तथा सनातन वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारक व संस्थापक थे। आपने अपना समस्त जीवन देशोद्धार के लिये अतिथिसेवा, गौ ब्राह्मण सेवा तथा भगवत्सेवा में ही व्यतीत किया। इस प्रकार द्वीप द्वीपान्तर निवासी अगणित जन समूह का उद्धार कर आपने सम्वत् १६२४ माघ शुक्ला ७ को श्री गिरिराज की कन्दरा में प्रवेश किया। कोटिशः धन्यवाद है इस परम पावन भारत माता को कि जिसके गर्भ से ऐसे देशोद्धारक परम यशस्वी, दिग्विजयी महापुरुष उत्पन्न हुये।

नोटः-मैंने यहां पर श्री विट्ठलनाथ जी के जीवन चरित्रको अति संक्षेपमें ही लिखा है क्यों हमारे मित्र वर पं० पीताम्बर राव भट्टाचार्य जी आपके जीवन चरित्र को व सिद्धान्तों को एक पुस्तक स्वरूप में लिख रहे हैं समय मिलने पर मैं आपके कुछ मोटे२ सिद्धान्त को लेकर उपस्थित होऊंगा।

अक्रूर की भक्ति

[ले० श्री मधुमंगल जी मिश्र]

बाल्यावस्था ही में अपनी देशी बोली में जो हृदयग्राही पद्य सुनते २ कण्ठस्थ हो गये थे उन में से एक यह था:—

शबरी सगुना हो विचार लिन मोरें घरे पाहुन होईं हैं नेह।

अर्थात् शबरी ने सगुन विचार कर जाना कि भगवान् मेरे घर पाहुने होकर आवेंगे। छोटे के घर बड़े का पधारना गौरव प्रदान करता है भगवान् ने स्वयं श्रीमुख से कहा है:—

सेवक सदन स्वामि आगमन्। मंगल मूल अमंगल दमन् ॥
प्रभुता तज प्रभु कीन्ह सनेहू। भयेउ पुनीत आज मम गेहू

जितने उच्च पदस्थित गुरु जन होते हैं उतना ही अधिक आश्रित जन आप्यायित होते हैं। अनुग्रह और गौरवान्वित होने का भाव श्रद्धा मूलक होता है। यदि गुरु जन आंधनि को भार स्वरूप पाहुने बनें, तो आनन्द की भावना की सर्वथा अभाव ही नहीं वरन् घृणा भी होती है। प्रत्युत श्रद्धा और भक्ति रहे तो सचमुच भार को भी भक्त जन वैशारता तथा प्रसन्नता पूर्वक सहन कर लेते हैं।

शबरी को भगवच्चरणारविन्द से सहज स्नेह था। भगवान् के आगमन के पूर्व ही लक्षणों से शुभागमन की कल्पना कर अपने सौभाग्य पर फूली नहीं समाती थी। इन भावों का मनन कर मेरा चित्त इन पंक्तियों को गुनगुनाता आह्लादित हुआ करता था।

जब विभीषण के शुभ परामर्श पर, रावण ने अंगीकार करने की कौन कहे चरण प्रहार किया तब अति खिन्न हो कर भगवच्चरणोन्मुख हुआ।

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं, करत मनोरथ बहु मन मांहीं
देखिहौं जाइ चरण जल जाता, अरुण मृदुल सेवक सुख दाता
जे पद परसि तरी मुनिनारी, दण्डक कानन पावन कारी।
जे पद जनक सुता उर लाये, कपट कुरंग संग धर धाये ॥
हर उर सर सरोज पद जोई, अहो भाग्य मैं देखब सोई।
जिन पायन कर पादुका, भरत रहे मन लाय ॥
अहोभाग्य मैं देखिहौं, इन नयनन सोइ जाय ॥

इन पंक्तियों को पढ़ कर सुख बोध के लिये भगवद्भक्ति रूपी अन्तर्बोध की आवश्यकता है। परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थी को अर्थ सुनने पर भी वह हर्ष संभव नहीं है जो कि इसके भाव को समझने वाले भक्त के लिये संभव है।

जब व्रज से श्रीकृष्ण और बलराम को बुलाने के लिये कंस ने अक्रूर को भेजा तब मार्ग में आते भगवद्भक्त अक्रूर के हृदयमें भावी दर्शनके विलास की कल्पनाएं उन्हें मुग्ध करने लगीं। ये भाव श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ३८वें अध्याय में मनोहर शब्दों से ओत प्रोत मिलते हैं। वे कहते हैं मुझसे कौन पुण्य बन पड़ा या कौन तप मैंने किया अथवा किस योग्य पात्र में दान दिया कि आज मुझे केशव के दर्शन मिलेंगे।

ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः।
यन्नमस्ये भगवतो योगि ध्येयाङ्घ्रि पंकजम् ॥

आज मेरे अमंगल नष्ट हुये मेरा जन्म सफल हुआ कि जिन चरणों का ध्यान योगी जन करते हैं उनका मैं प्रत्यक्ष दर्शन करूंगा। कंसने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया कि उस के द्वारा भेजा जाकर मैं उन

चरण कमलों का दर्शन करूंगा जिन के चरण कमल की प्रभा से महात्मागण संसारान्ध कूपसे उत्तीर्ण हो गए हैं। जिन चरणों का वन्दन ब्रह्मा तथा शिव आदि देवता करते हैं और जो चरण गौ चराते घूमते हैं उन के आज दर्शन करूंगा।

द्रक्ष्यामिनूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुण कंज लोचनम्
मुखं मुकुन्दस्य गुडूलकावृतं, प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः

आज मृग गण मेरी प्रदक्षिणा कर रहे हैं अतः यह निश्चय जान पड़ता है कि सुन्दर कपोल तथा नासिका से शोभायमान रक्तकमल के समान नेत्र वाले घुंघुराले बालों से आवृत मुसकराते हुये मुकुन्द के दर्शन आज करूंगा।

भूभारापनयन के लिये स्वेच्छा धृत नर शरीर लावण्य धाम भगवान् के दर्शन आज पाऊंगा तो मेरे नेत्र सफल होजावें।

अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निज हस्त पंकजम्।
कृपाभयं काल भुजंग रंहसा,
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां गृणाम्॥

काल भुजंग से उद्विग्न होकर शरणार्थियों पर अपने हाथ धर के जो अभयदान करते हैं, क्या आज मैं रथ से उतर कर उन्हीं भगवान् के चरणों पर शीस नवाऊंगा।

भक्तों के हृदय के भाव की समानता गोसांई तुलसीदास के नीचे लिखे पद्य में रूपान्तर से पाते हैं

कबहूं सो कर सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ शीस मेरे।
जेहिकर अभय किये जन आरत आरंक विवश नाम टेरे॥
जेहि कर कमल कठोर शंभु धनु भंजि जनक संताप मेट्यो
जेहि कर कमल उठाइ बन्धु ज्यों परम प्रीति केवट भेट्यो॥
जेहि कर कमल कृपाल गीध कहं उदक देइ निज लोक दियो
जेहि कर बालि विदारि दास हित कपि कुल पति सुग्रीव कियो
आयो शरण सभीत विभीषण जेहि कर कमल तिलक दीन्हो
जेहि कर गहि शर चाप असुर हति अभय दान देवन्ह दिन्हो
शीतल सुखद छांह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया॥
निशि वासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसी दास छाया

अक्रूर जी कहते हैं कि जिन कर कमलों पर भेंट देकर इन्द्र और बलि ने त्रिलोकी पर अधिकार पाया अथवा जिन करों से प्रेमासक्त गोपियों के रास विहार के समय श्रमापनोद किया क्या वे कर कमल भगवान् मेरे शीस पर रक्खेंगे?

हृदय के भीतर बाहर की बातें जानने वाले भगवान् मुझे कंस का भेजा हुआ जान कर विरोधी दृष्टि से तो न देखेंगे? जब मैं उन के चरणों पर मस्तक नवाऊंगा तब वे मन्द मुसकान के साथ मेरे ऊपर स्नेह दृष्टि से देखेंगे। सो मेरे पातक नष्ट हो जावेंगे। और मैं निश्शंक हो आनन्दित होऊंगा।

मैं उनका सजाति हूं और परम मित्र हूं उन्हें छोड़ मेरा और कोई इष्ट देव नहीं है, ऐसा समझ कर जब वे भुजाओं को फैला कर मुझे हृदय से लगावेंगे तब मेरे शरीर धारणजन्य पाप बन्धन शिथिल पड़ जावेंगे। अंग संग का लाभ प्राप्त कर जब मैं सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा होऊंगा और भगवान मुझे अक्रूर कह कर सम्बोधन करेंगे तब मैं अपने जन्म को सफल समझूंगा। धिक्कार है भगवान् का न तो कोई प्यारा वा मित्र है न कोई उनका द्वेष्य वा उपेक्ष्य है। तथापि वे भक्तों पर छाया वैसे ही रखते हैं जैसे शरणार्थी अभ्यागत को कल्पवृक्ष छाया देकर आश्रित करता है।

मुझे हाथ जोड़े खड़े देख उन के बड़े भैया

दाऊ जी क्या मेरा हाथ पकड़ के घर में लेजा कर बांधवों पर किये गये कंस के अत्याचारों का विवरण पूछेंगे।

इस प्रकार मार्ग में विचार करते जाते २ अक्रूर जी गोकुल ग्राम में पहुंच गये। सूर्य भी अस्त हो चले। जिनके चरण कमल की स्वच्छ धूल को लोकपालगण अपने किरीट पर धारण करते हैं उनके पद्म, यव, वज्र, ध्वजादि चिन्हों से अंकित चरणों को देख अक्रूर जी तो निहाल हो गये हर्ष से उनकी आंखों में जल भर आया। रथ से उतर कर, ये भगवच्चरण की धूल है ऐसा कह उसमें लोटने लगे। गौशाला में गो दोहन के स्थान पर अक्रूर ने पीताम्बर तथा नीलाम्बर धारी कृष्ण और बलराम को देखा। प्रेम के कारण उनका गला भर आया वे कुछ बोल न सके। शरणागत वत्सल भगवान् ने चक्रांकित करों से पकड़ कर हृदय में लगा लिया। भगवान् तो सबके घट २ की जानते हैं। अक्रूर की हार्दिक इच्छा भी उनसे छिपी न रह सकी। उदाराशय बलराम जी ने उन का हाथ पकड़ श्रीकृष्ण जी के साथ घरकी ओर प्रस्थान किया। उन से कुशल प्रश्न करके अच्छे आसन पर बैठा कर पैर धुलाकर मधुपर्क निवेदन किया। भगवान् ने अक्रूर को गोदान करके बहुत सा भोजन द्रव्य ला उपस्थित किया। भोजन कर चुकने पर बलराम जी ने पान बीड़ा दे पुष्प माला पहिना के उन्हें प्रसन्न किया। तब नन्द जी ने उन से पूछा कि कंस के यहां कैसे निर्वाह होता है। जिसने अपना बहन के जन्मे हुये बच्चों को मार डाला उसकी प्रजा का कुशल हम क्या पूछें? इस प्रकार बात चीत करते अक्रूर जी की थकावट दूर हुई और उसने धीरे २ कंस का संदेश कह सुनाया।

भजन

प्रेम की मिल मिल है नगरी ॥ टेक ॥

अखिल अगम ब्रह्माण्ड परे सब, लोकन ते अगरी ।१
अतिशय चित्र विचित्र अलौकिक, शोभा चहुं पगरी
नहिं तहं चांद न सूरज सोहे, जागत जग मगरी ॥ ३
रसकी भूमि नीरहु रसको, रसमय है सगरी ॥ ४ ॥
भरयो रहत रस सदा एक रस, पिये रसकी गगरी ५

२

दयानिधि अब तो लो अवतार
प्रबल हुवा है असुरों का दल शीघ्र करो संहार ॥टेक

दीनानाथ पृथ्वीनाथ तुम्हारी,
पृथ्वी पर होरही हाहाकार।
धेनु विप्र सुर नर किन्नर सब,
कर रहे पुकार ॥ १ ॥
दीनानाथ तुम तो सो रहे,
क्षीर समुद्र मंझार।
जागो आंख खोल कर देखो,
है क्या अत्याचार ॥ २ ॥
जब २ धर्म ग्लानि होती,
तब तब हरते भूभार।
अब आन कर जल्दी,
पूरा करो इकरार ॥ ३ ॥
राधेश्याम हटा कर अन्तर पट।
दर्शन दो सरकार।
देखें तो कैसे होते हो,
निराकार से साकार ॥ ४ ॥

३

बजरंग बली मेरी नाव चली,
जरा कृपा की बल्ली लगा देना।
मुझे रोग ने शोक ने घेर लिया,
मेरे ताप को नाथ मिटा देना ॥ टेक
मैं दास तो आप का जन्म से हूं,
सेवक और शिष्य भी धर्म से हूं ॥
बेशर्म विमुख निज कर्म से हूं,
मेरा चित्त से दोष भुला देना ॥ १॥
दुर्बल हूं गरीब हूं दीन हूं मैं,
निज क्रियागत क्षीण हूं मैं।
बलवीर तेरे आधीन हूं मैं,
मेरी बिगड़ी हुयी को बना देना ॥ २
बल देकर मुझे निर्भय कर दो,
शक्ति महान् मेरी अक्षय कर दो।
मेरे जीवन को सुखमय कर दो,
सरंजीवनी लाय पिला देना ॥ ३ ॥
करुणानिधि आप का नाम भी है,
शरणागत राधेश्याम भी है।
इसके अतिरिक्त यह काम भी है,
श्रीराम से मुझे मिला देना ॥ ४ ॥

४

इतना तो करना भगवन् जब जग में जन्म होवे।
तेरे चरण में हो मन जब ० ॥ टेक ॥
पृथ्वी पै जब मैं आऊं तुम को न भूल जाऊं।
तेरे ही गीत गाऊं जब जगमें जन्म होवे ॥१
माया नहीं सतावे वह ज्ञान दिल में आवे
हरजां तुही दिखावे जब जग में जन्म होवे ॥२
जहां ज्ञान हो घनेरा गुण गान भी हो तेरा।
उस घर में होवबेरा जब जग में जन्म होवे ॥ ३
जब काल की हो फेरी छबि सामने हो तेरी।
ईश्वर यह चाह मेरी जब जगमें जन्म होवे ॥

५

अब सखियां बनी तिलंगवा राधा सूबेदार बनी ॥टेक
लाल बनाती कुड़ती पहरें, और काछे कछनी।
तोमदर अरु पथर कलासी ज्यों चिमकत तेल धनी
मात यशोदा बाहर निकसी द्वारे भीड़ घनी।
कहो सन्तरी कहां ते आये कहो अपनो अपनी ॥२॥
कंस राय ने हमें पठाया सुनो नन्द घरनी।
बहुत दिना दधि माखन खायो अब भुगतो करनी ॥३॥
बरकम दार बनी चन्द्रावल, पकड़े श्याम धनी।
लाल दास दरशन की प्यासी लीजो भेज अपनी ॥४॥

६

छोटकड़ी मीरां राम भजन को चली ॥ टेक ॥
नित उठ मीरां मन्दिर जावे, नित चरणामृत लेवे।
पांच नाम ठाकुर के लेवे पाछे भोजन पावे ॥ १॥
सासु कहे सुनो मेरी बहु तो ऐसा काम मत कीजे।
राम नाम तो पीछे लेना घरका धन्धा कीजे ॥ २॥
मीरां कहे सुनो मेरी सासु ऐसी सीख मत दीजे।
राम नाम तो पहले जपना घर का धन्धा पीछे ॥३॥
सांवरियो सुख पाय लाडलो, आव पालकी जावे।
सासु बैठ डगमग रोवे बहु बैकुंठा जावे ॥ ४॥

७

चलो मन हरि संग वास करोरे ॥ टेक ॥
सुन्दर जग में व्याप रह्यो प्रभु वा में आश धरोरे ॥
सरल भाव से हरिगुण गावो पल पल शान्ति भरोरे।
दृढ़ विश्वास और प्रेम उन पर हरी प्रसंग धरोरे ॥
अटल रहो हरी चरणों में कबहूं न उनसे टरोरे।
प्रेमदास में आपके प्यारे क्यों ना आनन्द करोरे ॥
सबी आत्मा प्यासी इसी का क्यों नहीं ग्रान करोरे।

भक्ति के नियम

१. भगवान की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५ देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुँचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		२६१
२. भगवद्भक्ति [	श्री पूज्य भोले बाबाजी	२६२
३. शरणागत भक्त रघुनाथ		२६५
४. आह्वान (कविता) [	ले० श्री मदनगोपाल जी सिंहल	२७१
५. फूटगई मटकी [	ले० बहन श्री जयदेवी	२७१
६. कैसे (कविता)[	ले० श्री मदनगोपाल सिंहल	२७७
७. स्वं कर्तव्य [	ले० श्री सर्वदासीदेवी जी	२७८
८. गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान [	ले० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी	२८०
९. चेतावनी (कविता)	ले० श्री पं० हनुमानप्रसाद सैनिक	२८३
१०. गीतामें भगवान कीअभयवाणी [	ले० श्री आचार्य मदनमोहनजी गोस्वामी भक्ति तीर्थ भागवत रत्न	२८४
११. कृतकृत्यता [	ले० श्री स्वामी आत्मानन्दजी	२८६
१२. शरणागत(कविता)[	ले० प्रभु ब्रह्मचारी आश्रम	२८७
१३. गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी [	ले० श्री बालमुकुन्द जी शर्मा	२८८
१४. अक्रूर की भक्ति [	श्री मधुमंगल जी मिश्र बी. ए.	२९१
१५. भजन		२९३

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. वेदोपनिषत्	"	।-)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
६. ज्ञान भक्ति योग संग्रह	"	=)॥
७. शब्द सदाचार संग्रह	"	-)।
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९. शब्दसंग्रह	"	-)॥
१०. सारसंग्रह	"	≡)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	,	॥)
१२. भगवद्भक्तांक	"	॥≈)
१३. भगवदंक	"	॥।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तकें मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।